चन्दामामा

माँ - बच्चों का मासिक पत्र

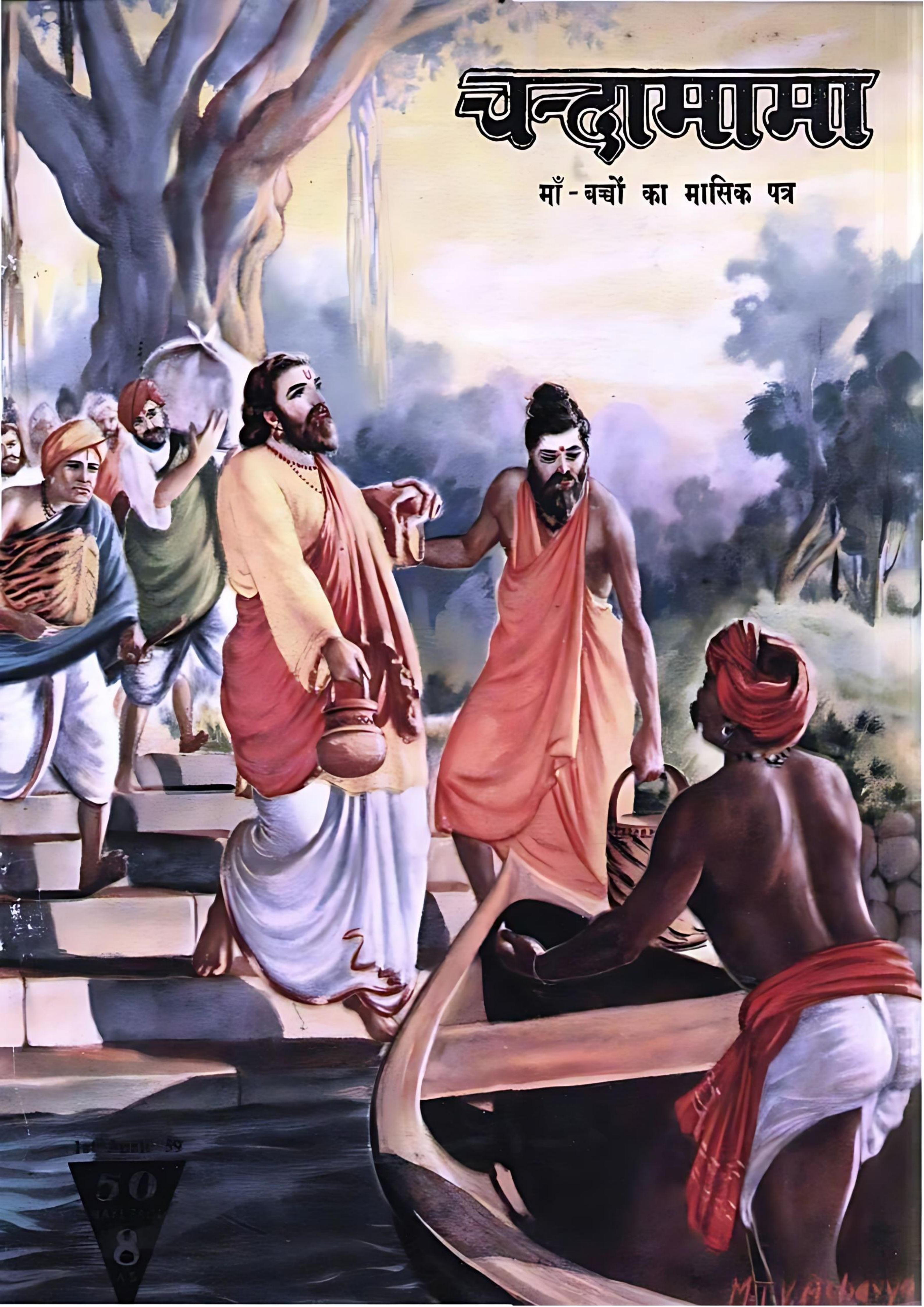

एक बार बोधिसत्व ने शेरी राज्य में कांसे-पीतल के बर्तनों के ब्यापारी के घर में जन्म लिया। वह पुराने नए बर्तन लोगों से खरीद लेता था और नए बर्तन बेचता था। बोधिसत्व लालची नहीं था। पराया ब्यापार में छेड़खानी करने की कोशिश में नहीं रहता और जितना लाभ होता, में सन्तोष कर लेता।

उसी राज्य में और एक लालची व्यापारी था। वह भी यही रोजगार करता था। वह बोधिसत्व का प्रतिद्वन्दी था। कौड़ी कौड़ी पर जान देता; बेईमानी करने में कभी नहीं हिचकिचाता था। वह बोधिसत्व को देख कर जलता था और जहाँ वह अपना माल बेचने जाता, वहीं वह भी पहुँच जाता।

एक बार इन दोनों ने 'तेलवाहा' नदी पार कर अन्धापुर में प्रवेश किया। वहाँ जाकर दोनों ने सोचा कि बेकार की होड़ हुई से कोई फायदा नहीं। इसलिए शहर को दो हिस्सों में बाँट लिया और तय किया कि कोई भी दूसरे के हिस्से में जाकर माल नहीं बेचे।

हाँ, उसी शहर में एक गरीब परिवार रहता था। किसी समय उस परिवार वाले बहुत अमीर थे। लेकिन तकदीर के फेर से वे अपना सारा धन गँवा बैठे थे। उस परिवार में अब बच रही थी एक बुढ़िया और उसकी पोती। दोनों बड़ी गरीबी में मुश्किल से अपने दिन काट रही थीं। एक एक कर पुराना माल असबाब बेच खा रही थी। इस तरह उनके घर की सभी वस्तुएँ बिक चुकी थीं। अब बच रही थी एक पुरानी थाली जिस में किसी समय उस घर का मालिक भोजन किया करता था। वह बहुत दिनों से घर के किसी कोने में पड़ी हुई थी। उस पर इतनी धूल जमी हुई

थी कि पहचानी भी न जा सकती थी। बेचारी बुढ़िया और उसकी पोती को मालूम नहीं था कि थाली किस धातु की बनी है। बोधिसत्व का प्रतिद्वन्दी लालची, व्यागरी उसी गली से जिस में वह बुढ़िया रहती थी, गुजरा। वह हाँक लगाता जा रहा था-"बर्तन ! बर्तन ! हम बर्तन बेचते हैं, खरीदते हैं।"

उसकी हाँक सुन कर लड़की अपनी दादी के पास दौड़ी गई और बोली- "दादी दादी ! मुझे एक गिलास खरीद दो न पानी पीने के लिए।"

"पैसा कहाँ है बिटिया ! तुम से तो हमारी हालत छिपी नहीं।" दादी ने करुणा भरे स्वर में कहा।

तब उस लड़की ने कोने में पड़ी हुई पुरानी थाली की बात याद दिलाई। तुरन्त बुढ़िया ने लालची व्यापारी को बुलाया और थाली लेकर बदले में एक गिलास देने को कहा।

व्यापारी ने थाली को हाथ में लेकर देखा। उसने सुई से खरोंच कर जाँच लिया कि यह किस धातु की बनी है। उसे तुरन्त मालूम हो गया कि यह सोने की है। बस, उसकी नीयत डोल गई। उसने वह थाली मुफ्त में ही किसी तरह हड़प लेनी चाही। इसलिए बुढ़िया से बोला-"दादी ! कहाँ से उठा लाई यह पुरानी थाली! यह तो किसी काम की नहीं। इसे तो कोई मुफ्त में भी नहीं लेगा।" यह कह कर उसने थाली नीचे रख दी और तुरन्त वहाँ से चला गया।

वास्तव में शहर का यह मुहल्ला बोधिसत्व के हिस्से में आया था। इसलिए थोड़ी ही देर बाद वह दूसरी ओर से उस जगह आया। वह भी पहले व्यापारी की तरह हाँक लगाता आया। उसकी हाँक सुन कर लड़की फिर अपनी दादी के पास दौड़ी गई। बुढ़िया

बोली- 'चेटी ! तू नाहक परेशान हो रही है। अभी अभी तो वह व्यापारी कह गया था कि यह थाली किसी काम की नहीं।" उसने बिटिया को समझाया।

तब लड़की बोली-"नहीं दादी ! यह व्यापारी बड़ा भला मानुस मालूम होता है। कैसी मीठी बातें करता है ! यह जरूर हमारी थाली ले लेगा।"

खैर, बुढ़िया ने बोधिसत्व को भी बुलाया। बोधिसत्व ने थाली को देखते ही सच्ची बात जान ली। यह बोला-"मैया! यह थाली सोने की है। हजार अशर्फियों से कम की न होगी। मैं इसे लेना तो चाहता हूँ, मगर अभी मेरे पास उतना पैसा नहीं है।"

तब बुढ़िया बोली-"बेटा! तुम्हारे आने के थोड़ी ही देर पहले एक आदमी आया था जो कहता था कि यह थाली किसी काम की नहीं। उसने इसे लेने से साफ इनकार कर दिया। अब तुम कहते हो, यह भाली सोने की है। शायद तुम्हारी भलमनसी से ही यह बदल गई है। इस लिए बेटा ! पैसे का ख़याल न करो। तुम्हारे पास जितना पैसा हो, उतना ही दे जाओ।"

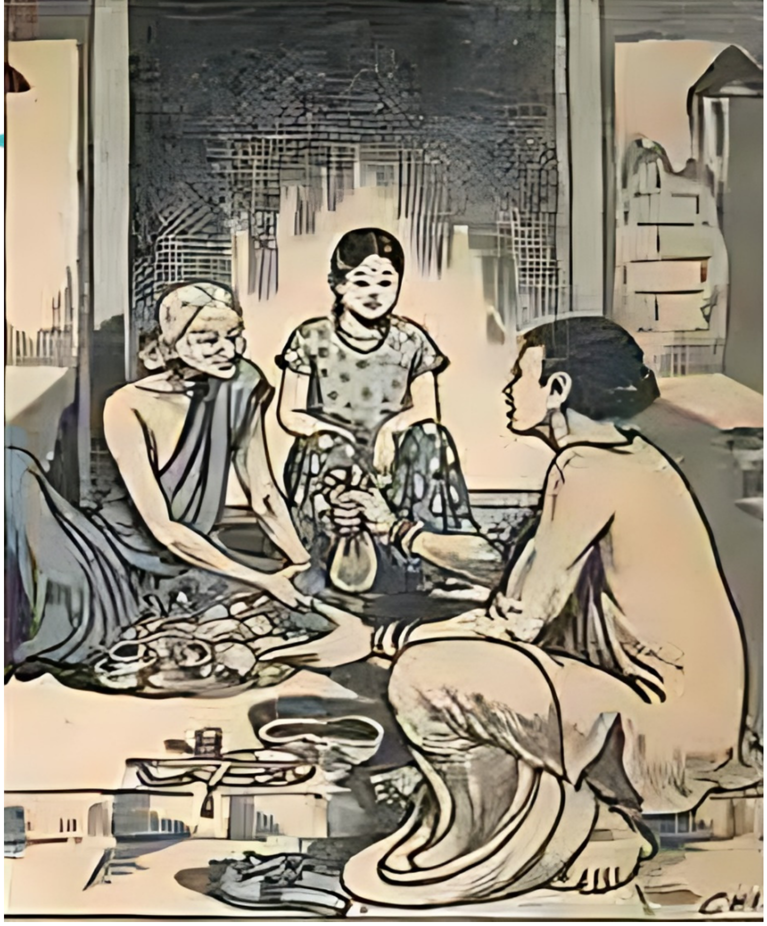

उस समय बोधिसत्व के पास आठ सौ ही अशर्फियाँ थी। हाँ, कुछ वर्तन जरूर थे। उसने वे बर्तन और अशर्फियाँ बुढ़िया को दी और बोला- "मैया ! अब मेरे पास कुछ भी नहीं है। हाँ, राह-खर्च के लिए आठ अशर्फियाँ रख ली हैं। क्योंकि उनके बिना मेरा कम नहीं चल सकता। बाकी जो कुछ मेरे पास था, तुम को दे दिया। इस तरह बुढ़िया की इजाजत से वह थाली लेकर बोधिसत्व वहाँ से जल्दी जल्दी नदी के किनारे गया और नाव वाले को दो अशर्फियाँ देकर नाव पर चढ़ गया।

बोधिसत्व के जाते ही लालची व्यापारी दुबारा बुढ़िया के घर आया और बोला-"अच्छा बुढ़िया। वह थाली तो जरा इधर दे दे ! और एक बार देख तो लूँ उसे। शायद कुछ काम आ जाय !" "लेकिन भैया ! अब वह थाली है कहाँ ? तुम भी भले आदमी हो; सोने की थाली को कह गए- 'किसी काम की नहीं।' और एक आदमी, शायद वह तुम्हारा साथी था, आया और हजार अशर्फियाँ देकर थाली खरीद ले गया।" बुढ़िया ने लालची व्यापारी से कहा।

इतना सुनते ही लालची व्यापारी के सारे बदन में आग लग गई। सोचने लगा-"इतने में यह अभागा कहाँ से टपक पड़ा ? बेशकीमती सोने की थाली उड़ा ले गया। हाय ! मुझे कितना घाटा हुआ। पल भर में सर्वनाश हो गया।" यों सोच कर बह क्रोध से पगला गया।

तराजू और बर्तनों की गठरी उसने वहीं फेंक दी और एक मोटा सा डण्डा लेकर नदी किनारे दौड़ा।

लेकिन तब तक बोधिसत्व की नाव मँझधार में पहुँच चुकी थी। "ऐ नाव वाले! नाव फिरा लाओ। मैं तुम्हें मुँह-माँगा ईनाम दे दूँगा।" लालची व्यापारी जोर जोर से चिल्लाने लगा। लेकिन बोधिसत्व ने मना किया और नाव-वाला राजी न हुआ।

तब लाचार लालची बोधिसत्व से ऊल-जलूल बकने और बोधिसत्व की निन्दा करने लगा। उसका सारा खून खौलते लगा। मुँह बन्दर की तरह लाल हो गया, छाती जोर जोर से धड़कने लगी। उसे बोधिसत्व पर इतना गुस्सा आया कि पागल की तरह नदी में कूद पड़ा और डूब कर मर गया।

विवेकी बोधिसत्व बहुत दिन तक जीबित रहा। दान-पुण्य करके उसने संसार में बहुत यश कमाया।

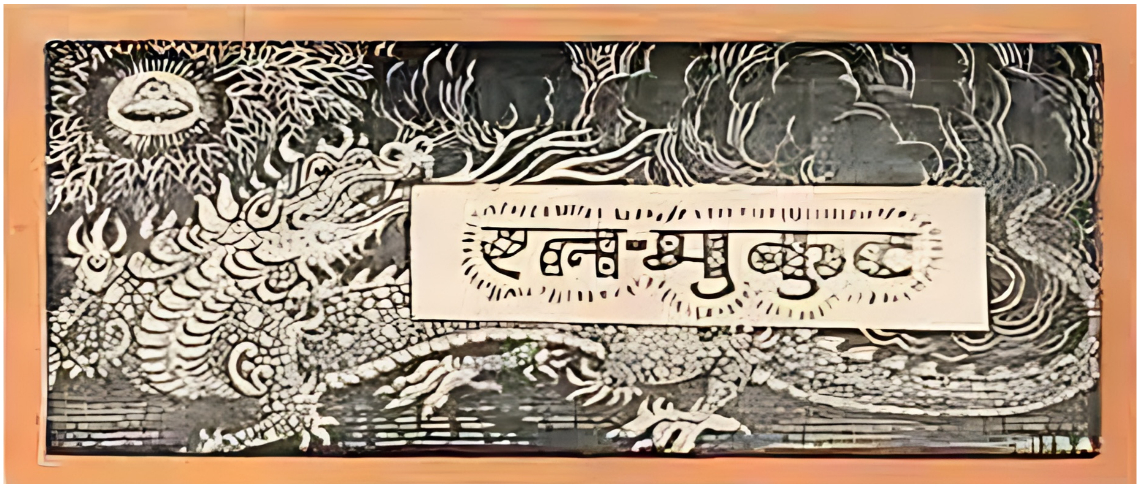

उसके बाद वही हुआ, जो महीपाल ने सोचा था। पडोस के एक टापू का राजा बसुपाल मञ्जुल-द्वीप पर चढ़ आया। दोनों दल वालों के बीच घमासान लड़ाई हुई। उस लड़ाई में तपोधन और महीपाल दोनों मारे गए। यह भयङ्कर समाचार सुनते ही महीपाल की पत्नी के प्राण पखेरू उड़ गए। फिर तो बसुपाल ने खुशी-खुशी मञ्जुल-द्वीप पर कब्जा कर लिया। रत्न-मुकुट के लिए द्वीप का कोना-कोना छाना गया। उसके गुप्तचर घर-घर जाकर उसके बारे में पूछताछ करने लगे। लेकिन कोई फायदा न हुआ।

यों बहुत दिन बीत गए। आखिर जब एक दिन राजा बसुपाल जङ्गल में शिकार खेलने गया तो उसे एक पेड़ की डालों पर कोई चमकती हुई सी चीज दिखाई दी। जरा नजदीक जाकर देखा तो वही रत्न-मुकुट था।

लेकिन बेचारा उसे देख कर भी बेबस रह गया। क्योंकि एक भीषण महा-सर्प उस पेड़ के तने से लिपटा हुआ था। उस साँप की आँख अङ्गारों की तरह चमक रही थी। उ साँप के पञ्जे भी थे और उन पञ्जों के नख बघनखे की तरह नुकीले थे। पीठ का चमड़ा बहुत ही मज़बूत था और कछुए की पीठ से भी ज्यादा कड़ा था। नथुनों से बारम्बार नारकी ज्वालाओं की सी लपेटें निकल रही थी। उसे देख कर बसुपाल स्तम्भित रह गया। वह उलटे पाँव लौट गया। महल को लौटते ही

सिपाहियों को हुक्म दिया-"अमुक जगह पर रत्न-मुकुट रखा हुआ है। फौरन जाकर उसे ले आओ।" तुरन्त सिपाही उस जगह दौड़े गए। लेकिन वहाँ जाते ही उनकी हिम्मत टूट गई। मगर राजा का हुक्म था। क्या करते? इसलिए एक एक कर उस साँप की आँखों की ज्वाला में परवानों की तरह जल मरे। एक भी लौट कर न आया।

तब राजा वसुपाल ने सारे राज में ढिँढोरा पिटवा दिया कि "जो कोई उस साँप को मार कर रत्न-मुकुट ले आएगा, उसे मुँह-माँगा ईनाम मिलेगा।" यह ढिँढोरा सुन कर बहुत से लोगों के मुँह से लार टपकने लगी। लेकिन जो कोई ईनाम के लालच से गया, फिर लौट कर नहीं आया।

आखिर राजा वसुपाल निराश हो चला। उसने नामी-गिरामी ज्योतिषियों को बुला कर पूछा-"बताओ ! रत्न-मुकुट पाने का क्या उपाय है ?" ज्योतिषियों ने अनेक पोथी पत्रे पलट कर कहा-"महाराज! रत्न-मुकुट तो राजा हर्षपाल के वंशजों को ही मिल सकता है। दूसरे उसे नहीं पा सकते।" फिर भी राजा बसुपाल के मन से रत्न-मुकुट पाने की अशा नहीं गई।

हाँ, बेटा ! मैंने जिस महीपाल के बार में बताया, वही तुम्हारे काका है। वही तुम्हारे स्वप्न में हर रोज आत्म-शान्ति की प्रार्थना करते हैं।" मित्रानन्द ने कहा।

थोड़ी देर बाद वे फिर कहने लगे-"बेटा! चित्रभानू ! जाओ! अपनी वीरता से रत्न-मुकुट ले आओ। इससे तुम्हारे काका की आत्मा को शान्ति तो पहुँचेगी ही। साथ ही तुम्हारे खानदान की इज्जत भी बच जाएगी। उधर तुम्हारे नाना अमरसिंह चिन्ता से घुल रहे होंगे। इसलिए जाओ, पहले उनका आशीर्वाद पा लो। इससे तुम्हारा भी भला होगा।"

यों मित्रानन्द का उपदेश पाकर कुमार चित्रभानु उसी दिन मगध-राज को चला।

* * * * *

पाठक पहले ही पढ़ चुके हैं कि उस दिन हर्षपाल को आग की लपटों से बचाने के बाद मन्दपाल अर्धपाल की पत्नी को बचाने के लिए वापस गया।

हाँ, तो इस तरह जन बच जाने के बाद हर्षपाल ने ज्यों ही देखा कि सब लोग इधर-उधर दौड़ रहे हैं और कोई उसकी ओर ध्यान नहीं दे रहा है तो वह चुपके से वहाँ से खिसक चला। उस गड़बड़ी में कई उस उसे पहचान नहीं सका। इस तरह बन्दीगृह से छुटकारा पाकर राजा हर्षपाल भूख-प्यास भी बुला कर भल्लाण से भाग चला। राह में अमरसिंह के भेदियों ने उसे देख कर पहचान लिया और अपने स्वामी के पास ले गए। राजा हर्षपाल को देख कर अमरसिंह की खुशी का ठिकाना न रहा।

उसी समय कुमार चित्रमानु भी मगध-राज आ पहुँचा। उसे देख कर उसके दादा और नाना हर्ष से बावले हो गए। जब चित्रभानु ने बताया कि वह किस काम पर जा रहा है और

वहाँ किस के कहने से आया है, तो दोनों ने उसकी बहुत सराहना की। लेकिन उन दोनों को उसका अकेले जाना पसन्द नहीं था। इसलिए उसके नाना अमरसिंह ने अपने बेटे विजयसिंह को भी उसके साथ कर दिया। ये दोनों बीर कुमार बड़ों का आशीर्वाद पाकर एक शुभ साइत मञ्जुल-द्वीप की ओर चले।

* * * * *

अब सुनो, वहाँ कारागृह के पास क्या हुआ। कुछ देर बाद राजगुरु को जो शोक मूर्च्छित पड़ा हुआ था होश आया। लेकिन वेचारे की समझ में न आया कि ऐसी दुर्घटना कैसे हो गई। आखिर उसने इसे विधाता

का खेल समझ कर सन्तोष कर लिया। फिर भी वह दुष्ट अपनी कुचिन्ताओं से बाज नहीं जाया। जब उसे पता लग गया कि मन्दपाल ने ही राजा हर्षपाल को बचाया था, तो यह उससे बदला लेने की चेष्टा में लग गया। हर्षपाल के गायब हो जाने से उसे थोड़ी-बहुत चिन्ता तो हुई। लेकिन आखिर सोचा-"यह बूढ़ा मेरा क्या बिगाड़ सकता है? इसके किए कुछ नहीं हो सकता।"

एक रात जब मन्दपाल बेखबर सो रहा था, राजगुरु ने चुपके से जाकर उसकी छाती मैं एक छुरा भोंक दिया। दूसरे दिन सारा इल्जाम निर्दोष पहरेदार के सिर थोप दिया और उसे फांसी दे डाली।

लेकिन लोगों के मन में शङ्का हो गई कि हो न हो, राजगुरु ने ही बूढ़े राजा हर्षपाल और मन्दपाल को मरवा डाला है। उधर राजगुरु के अत्याचार से घबरा कर सामन्तों ने मगध-राज अनरसिंह का आश्रय लिया। बूढ़े राजा हर्षपाल की सलाह के अनुसार वे सभी चलने लगे। राजा दर्षपाल ने खुद सोच-विचार कर निश्चय किया कि अब भल्लाण-दुर्ग पर घेरा डालने और दुष्ट राजगुरु के पापों का घड़ा फोड़ देने का समय आ गया है।

आखिर सभी सामन्तों की सेना एकत्र कर ली गई। रातों रात चल कर भल्लाण-दुर्ग पर घेरा डाल दिया गया। राजगुरु ने एक प्रातः उठ कर देखा तो सत्यानाश हो गया था। दुर्ग के निवासियों ने भी बगावत का झण्डा खड़ा कर दिया था। लाचार राजगुरु ने कहा कि किले के चोर दरवाजे से भाग चले। लेकिन हर्षपाल ने इस का भी प्रबन्ध कर रखा था। राजगुरु ज्यों ही दरवाजे से बाहर निकला कि मगध-राज के सैनिकों ने उसे गिरफ्तार कर लिया। राजगुरु के सिर पर बिजली टूट पड़ी।

किले पर राजा हर्षराल ने कब्ज़ा कर लिया। लोगों की खुशी का ठिकाना न रहा। सामन्त लोग भी फूले न खनाए। भल्लाण राज में फिर से पहले की सी शान्ति बिराने लगी। अब सब लोग चित्र-भानु और विजयसिंह के लौटने की राह देखने लगे।

* * * *

उधर ये दोनों कुमार अनेक कष्ट उठा कर किसी तरह मञ्जुल-द्वीप जा पहुँचे। राजा बसुपाल ने उन दोनों की बहुत खातिर की। "मैं तुम्ही दोनों की राह देख रहा था।" उसने कहा। "बड़ी खुशी की बात है कि रत्न-मुकुट का हकदार खुद ही उसे वापस ले जाने आया है।"

दूसरे दिन सब लोग लड़के उठे और उस जङ्गल में पहुँचे। उस पेड़ के तने से लिपटे हुए कराल व्याल के बारे में वसुपाल ने कुमार चित्रभानु को पहले ही बता दिया था। उसने साफ साफ कह दिया था कि इस काम मैं जान का खतरा है। लेकिन चित्रभानु ने इन बातों की कुछ भी परवाह न की। वह नङ्गी तलवार लेकर आगे बढ़ा और उस पेड़ के पास गया। वह महा सर्प उसे देख पुफकारने लगा। चित्रभानु ने आग की लपटों की परवाह न करके

तलवार का वार किया। आश्चर्य ! तलवार की चोट खाते ही वह साँप एक सुन्दर गन्धर्व बन गया। उस गन्धव ने रत्न-मुकुट लेकर स्वयं चित्रभानु के हाथों में रख दिया और बोला-"भाई! तुम ने मुझे शाप से छुटकारा दिला दिया। मेरी आत्मा को शान्ति मिल गई। लो, अपना रत्न-मुकुट ! इसे तुम्हारे हाथ सौंप कर मे निश्चिन्त हो गया। अब में जाता हूँ।" यह कह कर वह गन्धर्व, जो वास्तव में महीपाल था, अदृश्य हो गया।

यह सब देख कर राजा वसुपाल को बहुत अचरज हुआ। रत्न-मुकुट की अपूर्व शाभा देख कर उसका मन विचलित हो उठा। उसने

सोचा-"किसी न किसी तरह इसे हड़प लेना चाहिए।" उसने यह मन्शा अपनी रानी से भी कह दी। उसकी बेटी जयमाला ने चुपके से सारी बातें सुन ली। उसने सोचा-"किसी न किसी तरह इन दोनों अबोध राजकुमारों को बचाना चाहिए।" यह सोच कर उसने अपनी सखियों की सहायता से तीन घोड़ों को ले जाकर किले के फाटक पर बँधवा दिया। फिर उसने उन दोनों कुमारों के कमरे में जाकर सारा किस्सा सुना दिया और कहा-"फौरन यहा से भाग जाओ। नहीं तो जान नहीं बचेगी।" चित्रभानु तनिक हिचकिचाने लगे। यह देख कर जयमाला फिर बोली-"मेरा कहना मान लो। पिताजी तुम दोनों को मारने आते ही होंगे। मैंने अपने कानों सारी बात सुन ली। भला पिताजी जिन्होंने रत्न-मुकुट के लोभ से इस टापू पर चढ़ाई करके इसे जीता, तुम दोनों को उसे उठा ले जाते देख चुपचाप बैठे रहेंगे ! कभी नहीं। मैंने तुम दोनों को उस महल में देखते ही सोचा-'इन सुन्दर राजकुमारों को नाहक मरने नहीं देना चाहिए।' मैं जानती हूँ कि पिताजी कितने लालची हैं। मेरी माँ भी उनसे कुछ कम नहीं। आज से मेरा उन दोनों से वास्ता न रहा। मैं भी तुम लोगों के साथ यहाँ से चल देने को तैयार हूँ। चलो ! तीनों फौरन यहाँ से भाग चलें। देर न करो।" आखिर दोनों राजकुमारों ने उसकी बातों पर विश्वास कर लिया। तीनों भाग चले।

बसुपाल अपने निश्चय के अनुसार उन दोनों मूर्ख राजकुमारों को मारने जा ही रहा था कि एक नौकर ने दौड़ते हुए आकर कहा-"हुजूर ! राजकुमारी गायब है गई। सारा महल छान डाला। कहीं दिखाई नहीं देती।" यह सुन कर व्याकुल वसुपाल उलटे पाँव रनवास को लौट गया।

रनवास में जाते ही उसे खबर मिली कि राजकुमारी रत्न-मुकुट के लिए आए हुए दोनों राजकुमारों के साथ भाग रही हैं। तुरन्त वसुवाल ने घोड़े पर चढ़ कर उनका पीछा किया। बड़ी दूर तक पीछा करने के बाद उनसे पचास गज के फासले तक पहुँच कर उसने चित्रभानु पर अपना छुरा फेंका। छुरा उसकी पीठ में चुभ गया। फिर भी वह नहीं रुका। आखिर पीछा करने वाले हार मान गए। तीनों साफ निकल गए। समुन्दर के किनारे पहुँच कर तीनों जहाज पर चढ़ गए और तुरन्त लङ्गर उठा लिया गया। जब तक बसुपाल और उसके सिपाही समुन्दर के किनारे पहुँचे तब तक चिड़ियाँ निकल चुकी थीं। वे लाचार हो दाँत पीसते ही रह गए।

जहाज़ पर चढ़ कर राजकुमारी जयमाला ने चित्रभानु की सेवा सुश्रूषा की और दवा लगा कर घाव पर पट्टी बाँध दी। लेकिन कोई फायदा न हुआ। उसकी हालत बिगड़ती ही गई। क्योंकि छुरा जहर बुझा हुआ था। चित्रभानु ने धीरज धरा और अपनी पीड़ा उन पर प्रगट न होने दी। खिर किसी तरह तीनों भल्लाण जा पहुँचे।

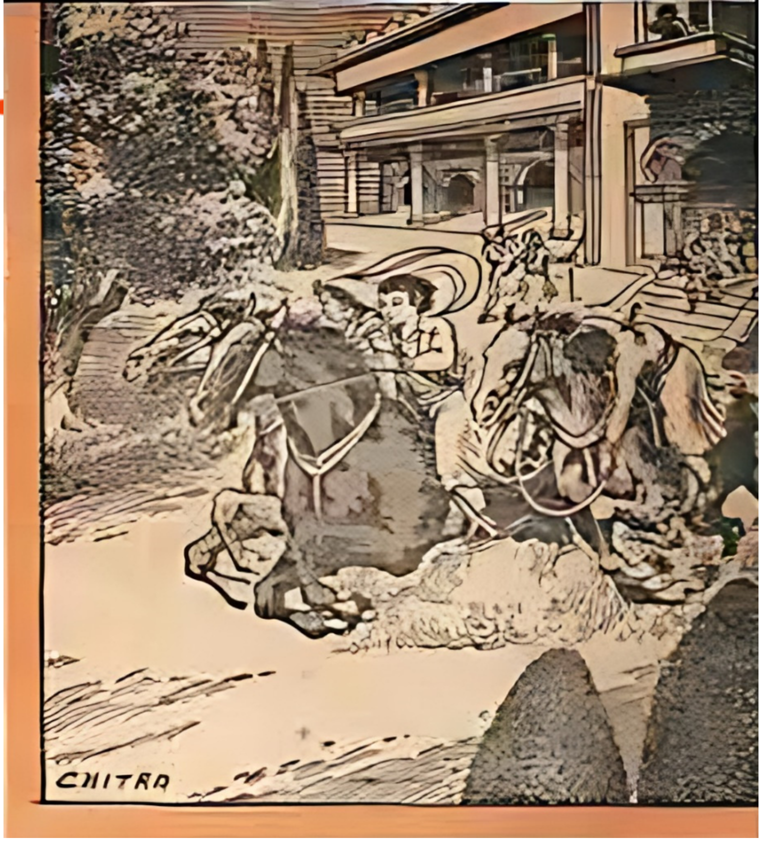

रत्न-मुकुट लेकर इन तीनों के जाने की खबर भल्लाण में तुरन्त चारों ओर फैल गई। स्वागत की तैयारियाँ होने लगीं। चित्रभानु ने उस अमूल्य मुकुट को ले जाकर सहर्ष हर्षपाल के हाथों में रख दिया। बूढ़े हर्षपाल ने तुरन्त कुमार चित्रभानु के राज तिलक की तैयारी शुरू कर दी।

लेकिन अभागे युवराज के भाग्य में राज्य पालन बदा न था। उसके जीवन की ज्योति पल पल मद्धिम होती जा रही थी। आखि रजा ने ऋषि मिश्रानन्द के पास खबर भिजवा दी। लेकिन मित्रानन्द वहाँ नहीं थे। वे आश्रम बन्द कर चले गए थे।

राज तिलक की साइत क्रमश: निकट आती गई। बेचारा चित्रभानु अब चल-फिर न सकता था। उसके पलङ्ग के पास हमेशा बैद्यों और हकीमों का जमघट लगा रहता था। लेकिन विधि का लिखा कौन टाल सकता है! बेचारा चित्रभानु सब को निराश करके राज तिलक के दो दिन पहले चल बसा। भल्लाण राज में मातम छा गया।

बूढ़े हर्षपाल के हृदय में आग लग गई। उसकी आँखों से आँसुओं का ताँता बँध गया। यहाँ तक कि उसके निकट जाकर समझाने में भी लोगों को डर लगने लगा। आफत का मारा हर्षपाल अपने कमरे में बैठा हुआ था। इतने में उसकी नजर रत्न-मुकुट पर पड़ गई। उसे देखते ही उसका सारा बदन गुस्से से जलने लगा। उसने सोचा-"सारे आफत की जड़ यही है।" तुरन्त उसने उसे उठा कर जमीन पर दे मारा। अमूल्य रत्न-मुकुट टूक-टूक हो गया। हीरे-जवाहर और मणि-मरकत ज़मीन पर बिखर गए। राजा हर्षपाल बावले की तरह बकने लगा-"हाय ! कितनी आशा लगा बैठा था कि चित्र-भानु यह मुकुट सिर पर घर कर सिंहासन पर बैठेगा और वह दृश्य देख कर यह जलती छाती जुड़ा लूँगा। अब क्या करूँ ?"

दूसरे ही क्षण वह तैश में भर कर सिर के बाल नोचते हुए कहने लगा-"कहाँ गया वह दुष्ट, पापी राज-गुरु ? आकर यह दृश्य देख ले और अपनी आँखें ठण्डी कर ले। कहाँ गया विश्वासघाती मन्दपाल ? मेरा सर्वनाश देख कर क्यों नहीं हँसता ?" इतना कहते कहते वह पागल की तरह दौड़ने लगा। इतने में उसका पैर उन चिकनी मणियों पर पड़ गया और वह फिसल कर चारों खाने चित हो गया। राजा हर्षपाल ने जवाहर बिछी फर्श पर गिर कर फिर उठने का नाम तक न लिया।

[समाप्त]

मृदुल-हृदय

किसी समय स्टेनमिज नाम का एक वैज्ञानिक रहता था। वह बड़ा ही पढ़ा लिखा और काबिल आदमी था। स्टेननिज देश का रहने वाला था उस में जाड़ा बहुत पड़ता था। जाड़े के दिनों में पानी भी जहाँ का तहाँ जम जाता और चारों ओर बरफ के सिवा कुछ न दिखाई देता।

इसलिए जाड़े के दिनों में उस देश के सभी घरों में अङ्गीठिया जलती थी। जाड़ा ऐसा कड़ा पड़ता था कि अङ्गीठी के बिना काम चलना मुश्किल था।

स्टेनमिज को भी सवेरे ही उठ कर अङ्गीठी सुलगानी पड़ती थी। इसलिए रात को ही वह इसका सारा इन्तजाम कर रखता था। उसे यह एक अचूक आदत सी पड़ गई थी।

हाँ, एक दिन वह सवेरे ही उठ कर दियासलाई हाथ में लेकर अङ्गीठी लगाने गया। सलाई जला कर अङ्गीठी सुलगाने के लिए आगे झुका। लेकिन अङ्गीठी में न जाने, क्या दिखाई पड़ा कि फूँक कर सलाई बुझा दी और चुपके वहाँ से उठ कर चला गया।

उस दिन जाड़ा भी और दिनों से कड़ा पड़ रहा था। सरदी के मारे सारा बदन ऐंठा जाता था। सर्द मुल्कों के रहने वाले पैरों में मोजे और हाथों में दस्ताने पहनने के आदी होते हैं। उनी कोट वगैरह तो पहनते ही हैं। स्टेनमिज भी ये सब पहने हुए था, फिर भी जाड़े के मारे सारा बदन थर-थर काँप रहा था। जाड़ा जैसे अन्दर से उमगा पड़ता था। उसने एक मोटे से कम्बल से सारा बदन ढँक लिया और कुर्सी पर बैठ कर लिखने-पढ़ने की कोशिश करने लगा। लेकिन जाड़े के मारे उँगलियाँ काँपने लगी और अक्षर टेढ़े-मेढ़े लिखने लगा। देखने वाले को जरूर शक होता कि यह लिखावट उसी की है या किसी और की?

चोखेलाल

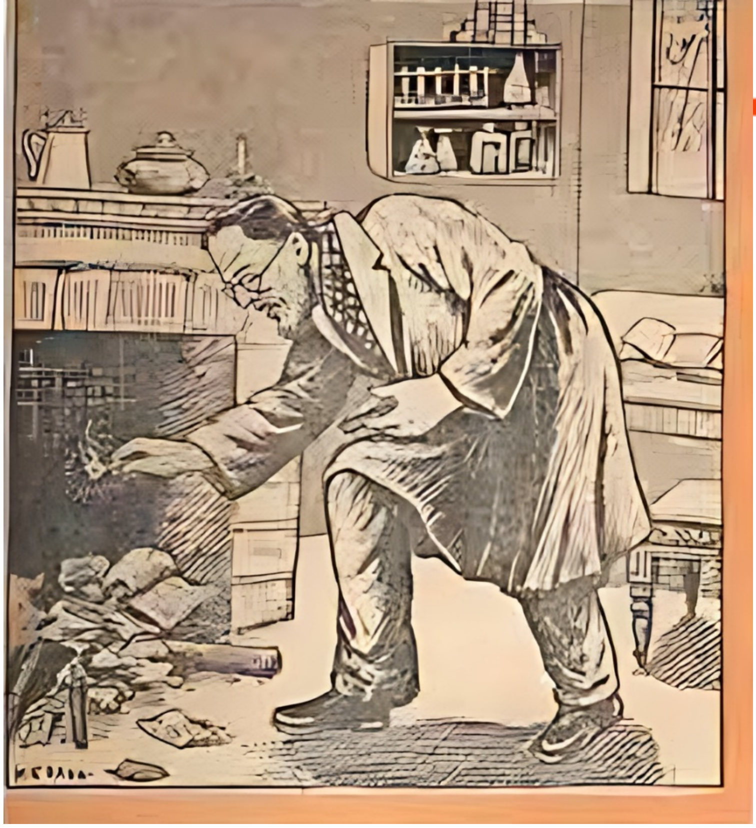

ऐसे समय स्टेनमिज का एक दोस्त उससे मिलने आया।

हमारे देश में जब कोई मेहमान आ जाता है तो हम उसे हाथ-पैर धोने के लिए पानी देते है और शरबत वगैरह देकर उसकी खातिर करते हैं।

लेकिन सर्द मुल्कों में जब बाहर से कोई मिलने आता है तो पहले अङ्गीठी की आग तेज करते हैं और उसे हाथ-पाँव सेंकने को कहते हैं। यह उन देशों के रहने वालों का रिवाज है। स्टेनमिज ने उस दिन अपने मित्र की ऐसी कोई खातिर नहीं की। आखिर जब लाचार होकर मित्र ने खुद ही अङ्गीठी की तरफ नज़र फेरी तो देखा कि आग बुझी हुई है।

उसे बहुत अचरत हुआ। उसने अपने मित्र से कहा-"क्यों भैया ! बिना अङ्गीठी के ही सरदी दूर करने वाली किसी चीज़ का आविष्कार करना चाहते हो क्या ? बताओ, आज अङ्गीठी क्यों नहीं सुलगाई ? अरे भले-मानुस! क्यों इस तरह सिकुड़े बैठे हो?" उसने मजाक उड़ाया।

स्टेनमिज ने अपने मित्र की बात का जबाब देना चहा। मगर सरदी के मारे शायद गला भी रुँध गया था। इसलिए उसके मुँह से कोई बात न निकली। "अच्छा, मैं ही सुलगा लेता हूँ अङ्गीठी ! दियासलाई कहाँ है ?" मित्र ने कहा और उठ कर दियासलाई ढूँढने लगा।

लेकिन स्टेनमिज ने मित्र को मना किया। वह उसका हाथ पकड़ कर अङ्गीठी के पास ले गया और बोला- "देखो !" मित्र ने जब नीचे झुक कर अङ्गीठी में देखा तो चकित रह गया। पिछली रात की गरम राख की गुदगुदी सेज पर चूहे के कुछ नए जनमे बच्चे मजे से लोटते-पोटते कुलबुला रहे थे। "अच्छा! ये नन्हे मेहमान कब पधारे

तुम्हारे घर ?" मित्र ने कहा। "शायद पिछले रात को जब मैं बेखबर सो रहा था। सवेरे उठ कर अङ्गीठी सुलगाने गया तो पहले-पहल नजर पड़ी इन पर।" स्टेनमिज ने मुसकुरा कर जवाब दिया।

"अच्छा, यह बात है। इसीलिए अङ्गीठी सुलगाना छोड़ दिया और इस तरह जाड़े में थर- थर काँप रहे हो ?" मित्र ने फिर सवाल किया। "भला, इनके यहाँ रहते अङ्गीठी कैसे सुलगाता ?" स्टेनमिज ने चूहे के बच्चों की तरफ देखते हुए जवाब दिया।

"वाह ! इसमें क्या रखा था ! इन्हें उठा कर दूसरी जगह रख देते और अङ्गीठी सुलगा लेते। इस छोटी सी बात के लिए इतनी हुज्जत उठाने की क्या ज़रूरत थी ?" मित्र ने कहा और चूहे के बच्चों को वहाँ से उठा कर दूसरी जगह रखने चाहा। लेकिन स्टेनमिज ने तुरन्त मित्र को रोक कर कहा-"ठहरो! इन्हें हाथ न लगाना। सोचो, उस चूहे ने बच्चे यहीं क्यों दिए ? इसलिए न कि राख की वजह से यह जगह गरम और मुलायम है। फिर इन नन्हे बच्चों को उठा कर दूसरी जगह रख देने से उन्हें कितनी तकलीफ होगी ?

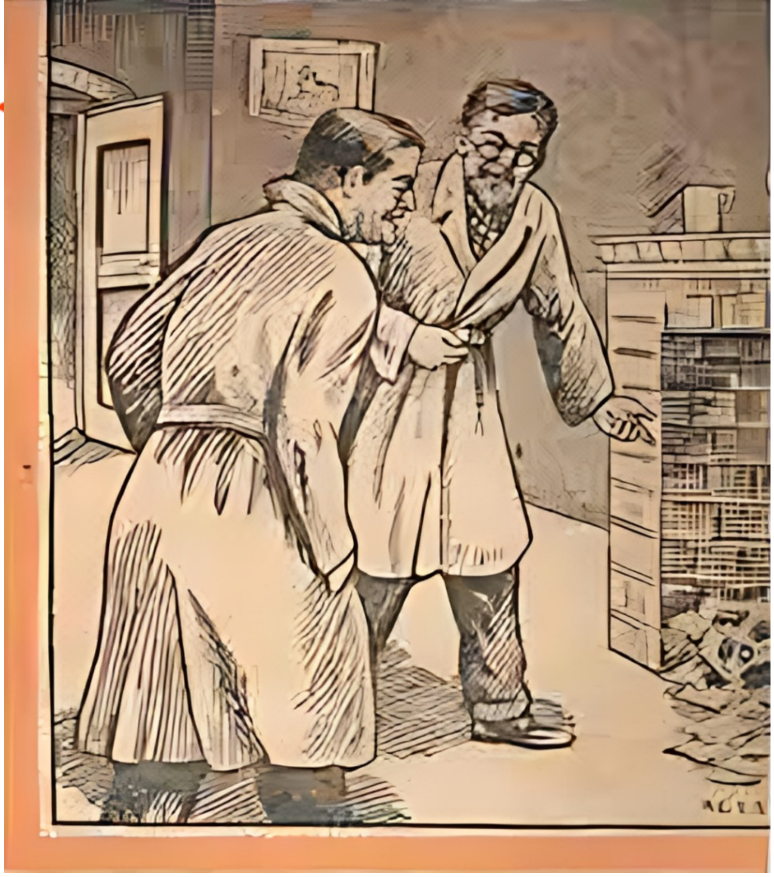

उसकी माता का हृदय कितना दुखेगा ? आखिर हमें इतनी उतावली करने की क्या जरूरत है ? कुछ ही दिनों में जरूर ये बच्चे बड़े हो जाएँगे और अपनी राह चले जाएँगे ! अभी जल्दी ही कौन सी आ पड़ी है ?"

स्टेनमिज की ये बातें सुन कर उसका मित्र हक्का-वक्का सा रह गया। अपने मित्र की दयालुता का यह उदाहरण पाकर उसे बहुत आनन्द भी हुआ।

स्टेनमिज का हृदय इतना मृदुल था कि उसने जाडे में ठिठुरना मञ्जूर किया; मगर उन चूहे के बच्चों को उठा कर दूसरी जगह रखना पसन्द न किया।

किसी समय आनन्दनगर पर नित्यानन्द नाम का राजा शासन चलाया करता था। उसकी इकलौती लड़की का नाम ज्योतिर्मई था। ज्योतिर्मई बड़ी सुन्दर थी। उन दिनों संसार में जितने राजकुमार थे, सभी मन ही मन उसे अपनी रानी बनाने की इच्छा रखते थे।

अन्त में यही एक विषम समस्या साबित हुई। कोई तय न कर सका कि उन सब राजकुमारों में से कौन सब से ज्यादा राजकुमारी का पति बनने योग्य है। ज्योतिर्मई के योग्य वर चुनने में राजा मन्त्री आदि सबका माथा दुखने लगा। अन्त में राजकुमारी ने ही इस समस्या का हल खोज निकाला। उसने कहा- "मेरा भावी पति ऐसा हो जो सारे संसार को जीत सके। हमारा पड़ोसी राजा बज्रवदन संसार का सब से बड़ा बीर माना जाता है। इसलिए मेरा प्रण है कि जो बज्रबदन को जीतेगा वही मेरा पति बनेगा।"

राजकुमारी के इस निश्चय की खबर राजा को लगी। अपनी पुत्री की बुद्धिमत्ता देख कर वह विस्मित रह गया। उसका पड़ोसी वज्रवदन उसे बहुत कष्ट भी दे रहा था। बस, उसने सोचा-"एक पन्थ दो काज। इसलिए तुरन्त ढिँढोरा पिटवा दिया कि जो वीर तिमिर द्वीप के राजा बज्रबदन को जीतेगा उसी को राजकुमारी मिलेगी।"

यह ढिँढोरा सुनते ही तिमिर-द्वीप को जाने वाले देश देश के बीर राजकुमारों का ताँता सा बँध गया।

तिमिर-द्वीप एक छोटा सा राज था। उस द्वीप को समुन्दर की एक छोटी सी शाखा आनन्दनगर से अलग करती थी। उस द्वीप का राजा बज्रबदन बड़ा बलवान था। वह कभी दूसरे देशों पर चढाई कर उन्हें जीतने की

रामानन्द मिश्र

इच्छा तो नहीं रखता था। मगर कोई दुश्मन उसके द्वीप में कदम रखता तो वह जिन्दा लौटने न पाता।

यह बात संसार के सभी राजकुमारों को मालूम थी। वे जानते थे कि बज्रबदन अजेय है। फिर भी ज्योतिर्मई से विवाह करने की आकांक्षा से वे प्राणों की आशा छोड़ कर आगे बढ़ रहे थे।

तिमिर द्वीप के सामने ही इस पार एक छोटा सा घाट था। यहाँ से नावों पर सवार होकर वज्रवदन पर विजय पाने की अभिलाषा रखने वाले सभी एक एक कर उस पार तिमिर-द्वीप में जा उतरने लगे। वज्रवदन से पहले-पहल लड़ने का मौका काञ्चन द्वीप के राजकुमार को मिला। इस पार हजारों लोग राजकुमार के लौटने की राह देख रहे थे। राजा नित्यानन्द और राजकुमारी ज्योतिर्मई एक जहाज पर चढ़ कर इन्तजार कर रहे थे। दो घण्टे भी बीतने न पाए थे कि काञ्चन द्वीप का राजकुमार चीखता-चिल्लाता वापस आया। लोग पूछना ही चाहते थे कि क्या हुआ ? इतने में राजकुमार चिल्ला उठा-"दुष्ट ने मेरे दाहिने हाथ की कनिष्ठा काट डाली। बुलाओ वैद्य-हकीम को ! मेरी जान जा रही है।"

बस, सब को मालूम हो गया कि वज्रवदन अपने दुश्मनों की क्या गत बनाता है। ज्यों ही काञ्चन द्वीप का राजकुमार बज्रवदन के पास गया कि उस वीर ने द्वन्द्व युद्ध में उसे हरा दिया। अन्य राजकुमारों को भी चेताने के लिए उसने उसके दाहने हाथ की कनिष्ठा काट ली और जान से छोड़ दिया।

"भला हुआ कि उँगली ही काट ली ! गरदन काट लेता तो जान ही चली जाती।" लोग कहने लगे और हँसने लगे। इस के बाद भी कई राजकुमार तिमिर-द्वीप गए। लेकिन सब ने वज्रवदन के हाथ हार खाई।

यहाँ तक कि धीरे धीरे सारे संसार में मशहूर हो गया कि वज्रवदन के पास राजकुमारों की कनिष्ठाओं का एक अच्छा खासा संग्रह है। दुनिया में जहाँ देखो वहीं चार ही उँगलियों वाले राजकुमार थे। इन बेचारों का सब लोग मजाक उड़ते थे।

यह हालत देख कर राजा नित्यानन्द बड़ी चिन्ता में पड़ गया। राजकुमारी ज्योतिर्मई भी बहुत परेशान हो गई। अब वज्रबदन से लोहा लेने के लिए कोई राजकुमार आगे न बढ़ता था। आनन्दनगर में मातम छा गया। ऐसी हालत में एक किसान का लड़का राजा का दर्शन करने आया। उसने राजा के सामने आकर कहा-"हुजूर | मैं राजकुमार नहीं हूँ। एक किसान का लड़का हूँ। फिर भी बज्रबदन को जीतने का हौसला रखता हूँ। क्या उसे जीतने का मौका मुझे भी मिलेगा ?"

राजा ने मन्त्री की तरफ देखा और फिर अपनी बेटी की तरफ देखा। दोनों का इशारा पाकर उसने कहा- "जो कोई वज्रवदन को जीतेगा उसे राजकुमारी मिलेगी।" राजा का आश्वासन पाकर किसान का लड़का वहाँ से चला गया।

यह बात संसार में हर कोई जानता था कि बज्रबदन जिस जिस को हरा देता है, उस उसकी कनिष्ठा काट कर छोड़ देता है। इस तरह बज्रवदन के हाथ हारे हुए हर राजकुमार के दाहने हाथ में चार ही उँगलियाँ होती थीं। इससे यह भी अपने आप साबित था कि जो कोई बज्रबदन से लड़ने के बाद भी पाँचों उँगलियाँ समूची लेकर वापस आए, वह उससे हारा नहीं: बल्कि उसी ने वज्रवदन को हराया होगा।

किसान का लड़का यह सब जानता था। फिर भी वह वज्रवदन को जीतने के लिए एक हँसुए के सिवा और कोई हथियार साथ

नहीं ले गया। राजा मन्त्री और हजारों आदमी, जो उसे विदा करने आए थे, यह देख कर हैरान हो गए।

किसान का लड़का ज्योंही तिमिर-द्वीप पर उतरा, राजा बज्रबदन के पास खबर गई और वह उससे लड़ने आया। "मैं इन बेवकूफों पर तरस खाकर जान से छेड़ देता हूँ। इससे इन दुष्टों का दुस्साहस और भी कर, बढ़ता जा रहा है। इस बार इस बेवकूफ़ की उँगली नहीं, गरदन ही काट दूँगा। बस, सारा फसाद मिट जायगा।" बज्रबदन ने क्रोध से सोचा और गरजने लगा।

तब किसान के लड़के ने नम्रतापूर्वक सर झुका कर कहा- "देव! मैं आपसे लड़ने की धृष्टता नहीं कर सकता। मैं अभी अपनी हार कबूल कर लेता हूँ। लीजिए, मेरी छोटी उँगली काट लीजिए। मैं चुपके यहाँ से लौट जाता हूँ।" यह सुन कर बज्रबदन को बडा आश्चर्य हुआ। उसने सोचा-"लड़का तो समझदार मालूम होता है।" उसने दाहने हाथ की छोटी उँगली काट ली और उसे वापस लौटने दिया।

किसान के लड़के को इससे बिलकुल अफसोस नहीं हुआ। उलटे उसे बहुत खुशी हुई। वह नाव पर चढ़ कर बापस चला। पार उतरते ही अपना हँसुआ उठा कर खुशी से चिल्लाया-"वज्रवदन हार गया। मेरे दाहने हाथ की उँगलियाँ देख लो।" लोग आखें फाड़-फाड़ कर देखने लगे। किसान के लड़के के दाहने हाथ की पाँचों उँगलियाँ सुरक्षित थीं। तुरन्त सब लोग-"विश्व विजयी वीर की जय हो !" कह कर चिल्लाने लगे। राजकुमारी ज्योतिर्मई ने किसान के लड़के के गले में जयमाला डाल दी। चारों ओर मङ्गल वाद्य बजने लगे। हाँ, किसी को यह मालूम न हो सका कि किसान के लड़के के दाहने हाथ में पहले ही से छः उँगलियाँ थी।

किसी समय एक राजा रहता था। बहुत दिन तक निस्सन्तान रहने के बाद उसकी एक लड़की पैदा हुई। वह बड़ी सुन्दरी थी। क्यों क्यों यह बड़ी होती गई, उसकी सुन्दरता भी बढ़ती गई। लेकिन उसकी दिन दिन बढ़ती हुई सुन्दरता देख कर राजा को खुशी के बदले अफसोस होने लगा। बात यह थी कि राजकुमारी किसी भी स्त्रियोचित कला कौशल में रुचि नहीं दिखाती थी। पिता के बाद वही गद्दी पर बैठने वाली थी। फिर भी वह राजोचित मर्यादा का पालन नहीं करती थी।

जिस दिन से उसने चलना सीखा, उस दिन से उसे दौड़ने का एक चसका सा लग गया था। उसने बस, पण सा कर लिया था कि चाहे स्नुष्य हो या पशु-पक्षी, कोई उससे ज्यादा तेज़ न दौड़ सके। दूरी पर कोई घोड़ा दौड़ता दिखाई देता तो वह उसका पीछा करने लगती और उससे आगे निकल कर ही दम लेती। जङ्गल में जाती तो जङ्गली जानवरों से होड़ करने लगती। प्रमोद बन में जाने पर हरिण आदि ही से बाजी लगाने लगती। यों बहुत दूर तक और बहुत देर तक दौड़ने पर भी वह कभी थकने का नाम न लेती। यह देख कर लोगों की बहुत अचरज होता। "वायुदेव के अलावा दूसरा कोई हमारी राजकुमारी से दौड़ने में टकर नहीं ले सकता।" लोग कहते। यों धीरे धीरे उस राजकुमारी का नाम ही 'मारुती' पड़ गया।

राज के सभी लोगों ने राजकुमारी की दौड़ने की यह लत छुड़ाने की कोशिश की। रनवास की औरतों ने भी उसे बहुत कुछ समझाया। प्रधानमन्त्री और पुरोहित ने अनेकों बार राजवंश की स्त्रियों की मर्यादा के बारे में लम्बे व्याख्यान झाड़े। उन्होंने

कहा-"तुम्हारे पिताजी बूढ़े हो गए हैं। राज-काज का बोझ वे और ज्यादा दिन तक नहीं सम्हाल सकते। कोई नहीं कह सकता कब यह बोझ तुम्हारे सिर टूट पड़े।

राज मुकुट के प्रति प्रजा का आदर और अनुराग अक्षुण्ण होना चाहिए। नहीं तो राज्यभार सम्हालना असम्भव हो जायगा। घोड़ों और हरिणों से दौड़ने में बाजी लगा कर जीतने मात्र से प्रजा किसीका सम्मान नहीं करेगी। क्योंकि राज-काज सम्हालने के लिए दौड़ना कोई अनिवार्य गुण नहीं है। उसके लिए तो बुद्धि की कुशलता और दूर की सूझ चाहिए। अब भी अगर राज-काज की ओर तुम्हारा ध्यान नहीं जायगा तो आगे बड़ी मुश्किल पड़ जाएगी।"

मन्त्री और राजपुरोहित के इस तरह समझाने की और भी एक वजह थी। वह यह थी कि राजकुमारी मारुती सयानी हो गई थी। उसका विवाह और ज्यादा दिन तक टाला नहीं जा सकता था। राज-तिलक टाला जा सकता था; मगर विवाह टालने में कई अड़चनें थी। मारुती अड़ोस-पड़ोस के राजकुमारों में किसी को चुन लेती तो बाकी सारा काम मन्त्री और राजपुरोहितजी सम्हाल लेते। लेकिन एक बात जरूर थी; जब तक मारुती अपना रङ्ग ढङ्ग नहीं बदलती तब तक कोई भी राजकुमार उससे ब्याह करने को राजी नहीं होता।

मन्त्री और पुरोहित की बातें मारुती ने ध्यान से सुनी। अन्त में उसने कहा-"अच्छा, मैं विवाह करने को राजी हूँ। लेकिन मुझे आपके चुने हुए राजकुमार नहीं चाहिए। मैं विवाह तो उसी से करूँगी जो दौड़ने में मुझे हरा सकेगा। जो मुझ से ज्यादा तेज नहीं दौड़ सकता, वह मेरे पति बनने लायक नहीं।"

राजकुमारी की यह दलील सुन कर मन्त्री हक्का-वक्का सा रह गया। पुराहितजी के मुँह से कोई बात न निकली।

"अच्छा, बेटी! तुम्हारे इच्छानुसार ही सब कुछ होगा। मैं अभी आस-पड़ोस के सभी देशों में खबर भिजवाता हूँ।" मन्त्री ने कहा। "हाँ, और भी एक शर्त है। मैं राजवंश की मर्यादा भङ्ग नहीं करना चाहती। मैं यह नहीं चाहती कि हर ऐरे-गैरे नत्थु-खैरे को मुझसे होड़ करने का मौका मिले। इसलिए शर्त यह हो कि जो मुझमे दौड़ने में हार जाए, वह जान से हाथ धो बैठे। यह भी सब लोगों को सूचित कर दीजिएगा।" मारुती बोली। "जो अज्ञा।" मन्त्री ने कहा।

*   *   *   *

मारती के स्वयम्बर की विचित्र शर्त सुन कर सब देशों के लोग हैरान हो गए। क्योंकि ऐसा दृष्टान्त किसी ने पुराण और इतिहास में भी नहीं पड़ा था। लोगों ने अनेक प्रकार के स्वयम्बरों के बारे में सुना था। मगर दौड़ने की बाजी लगा कर पति को चुनने का हाल आज तक किसीने नहीं सुना था।

एक बात और थी-स्वयम्बर में भाग लेने वाले आपस में ही होड़ कर करते थे। भावी वधू से छोड़ करने की बात तो बिलकुल अपूर्व थी।

मारुती की सुन्दरता सारे संसार में मशहूर थी। इसी कारण से कुछ साहसी इस होड़ में भाग लेने आए। मारुती इकलौती बेटी थी। इसलिए राज्य लोभ से और कुछ लोगों ने साहस किया।

"एक स्त्री हमें दौड़ने में चुनौती दे और हम चुप रह जाएँ?" कुछ राजकुमारों ने सोचा और आगे बढ़े। और कुछ लोग दौड़ने

के शौकीन थे। ऐसे लोग भी प्राणों की परवाह न करके मारुती को जीतने चले। कुछ लोग दौड़ना सीखने लगे।

इस तरह अनेक देशों से तरह तरह के उम्मीदवार आए। उनमें कुछ सुप्रसिद्ध व्यक्ति थे, कुछ सुन्दर थे, कुछ बुद्धिमान थे और कुछ ऊँचे घरानों-वाले थे। लेकिन ऐसे बहुत कम थे, जो सचमुच दौड़ सकते थे। इधर मारुती तो आठों पहर दौड़ने के फिराक में रहती थी। दौड़ने का उसे चसका था।

राजमहल के सामने एक बड़े मैदान में इस दौड़ की तैयारी की गई। दोनों ओर दर्शकों के खड़े रहने के लिए इन्तजाम किया गया। दौड़ में भाग लेकर हारने बालों के लिए एक बलिमञ्च भी खड़ा क दिया गया। जो कोई राजकुमारी से हार जाता, उसको पकड़ कर सीधे बलिमञ्च ले जाया जाता।

पहले दिन बारह उम्मीदवार उस बलिमञ्च पर दुर्मरण को प्राप्त हुए। देखने वालों के दिल दहल गए। लोग मारुती को भला-बुरा कहने लगे। कुछ लोगों ने कहा-"उसका पत्थर का दिल है।" और कुछ लोगों ने कहा-"इस में उसका तो कोई दोष नहीं; दोष तो उससे दौड़ने की धृष्टता करने वालों का है।" कुछ लोगों ने कहा-"यह दोड़ तुरन्त बन्द कर देनी चाहिए क्योंकि होनहार राजकुमारों की जान नाहक जा रही है।" और कुछ लोगों के मत में मारुती का व्याह कभी नहीं होने वाला था। इसलिए कि उसे दौड़ने में हराना नामुमकिन था।

मारुती से विवाह करने की इच्छा रखने वाले हर रोज़ आते ही रहे। यज्ञ के पशुओं की तरह बलिमञ्च पर रोज अनेकों शीस लोटते ही रहे। यह हत्याकाण्ड रोकने की कोई सूरत नजर न आई।

इस तरह मारुती से विवाह करने के लिए आए हुए लोगों में कुमार नाम का एक नौजवान भी था। वह था तो राजकुमार ही; मगर बचपन में ही माँ-बाप मर गए थे और दुश्मनों ने उसके राज पर कब्ज़ा करके उसे मार भगा दिया था। तब से बेचारा न जाने कहाँ, कहाँ, भटकता फिर रहा था। इस देश में संयोगवश कदम रखते ही कुमार ने इस विचित्र स्वयम्बर के बारे में पहले-पहल सुना। एक रोज़ वह भी उस होड़ के मैदान में आया।

वहाँ आकर ज्यों ही मारुती पर नज़र उड़ी, बेचारा कुमार सारा संसार भुला बैठा। उसे यह भी याद न रहा कि वह कौन है और वहाँ क्या कर रहा है।

मारुती ने एक अभागे को हराया। बेचारे को तुरन्त पकड़ कर बलिमञ्च पर ले जाया गया। लोगों के आर्तनाद से आसमान गूञ्ज उठा। लेकिन बेचारे कुमार को मारुती के सिवा और किसी चीज का ध्यान न था। लोगों का आर्तनाद भी उसे सुनाई न दिया। वह एक-टक मारुती की ओर देखता रहा।

धीरे धीरे सब लोग वहाँ से चले गए। कुमार भी वहाँ से चल पड़ा। लेकिन

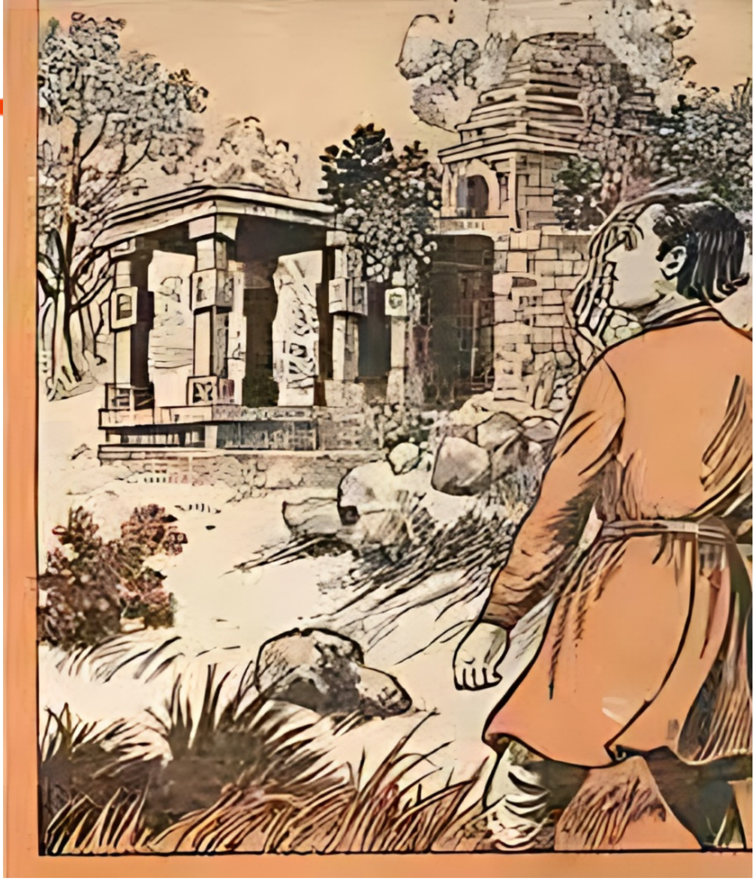

उसे यह भी ख्याल न था कि कहाँ जा रहा है। वह सीधे नगर के बाहर चला गया और नदी के किनारे से चल कर एक उजाड़ मन्दिर के नजदीक जा पहुँचा। अन्दर जाने पर उसने देखा कि वह देवी पार्वती का एक पुराना मन्दिर है। पुराना मन्दिर सूना था। जगह जगह दीवारों की दरारों में अजीव पेड़-पौधे उग आए थे। मालूम होता था, बरसों से कोई उधर नहीं आया है। कीड़े-मकोड़े और छोटे-छोटे जीव-जन्तु वहाँ मजे में सैर-सपाटा कर रहे थे।

देवी पार्वती की मूर्ति को देखते ही कुमार के हृदय से भावनाओं का स्रोत उमड़ पड़ा।

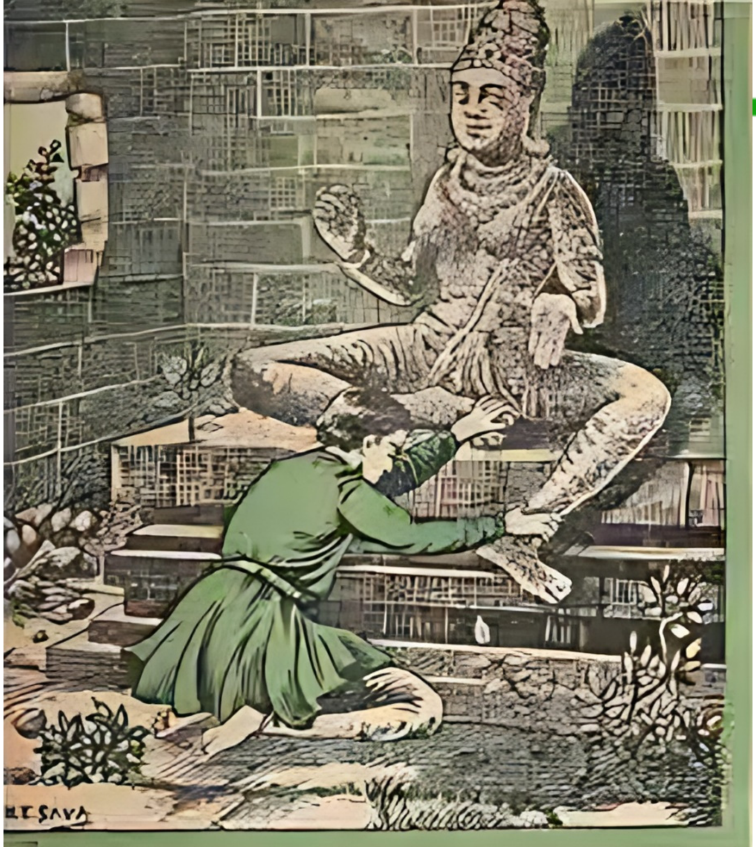

वह घुटनों के बल देवी के पैरों के पास बैठ गया और कहने लगा-"माँ ! भवानी ! तुम मेरी कुलदेवी हो। तुम जानती हो, मेरी जिन्दगी कितने दुःखों में से गुजर चुकी है। फिर भी मैंने कभी तुमसे कुछ नहीं माँगा। सारे कष्ट धीरज के साथ सहता गया। लेकिन अब यह

नई पीड़ा नहीं सही जाती। कृपा करो; किसी तरह मारुती को मुझे दिला दो। मैं राज-पाट नहीं चाहता। ऐशो-आराम नहीं चाहता। मैं मारुती को चाहता हूँ। उसके अलावा मुझे इस संसार में और कुछ नहीं चाहिए। तुम्हारे चरणों की कसम खाकर कहता हूँ। माँ, मारुती बिल्कुल अबोध है। वह नहीं जानती कि दुनियाँ में कौन सी चीज़ चाहने योग्य है। नहीं तो वह इस तरह का स्वयम्वर नहीं रचाती। माँ, किसी तरह उसके हृदय में वह ज्वाला सुलगा दो जिससे वह भी जीवन का अर्थ समझ जाए। तुम्हारे सिवा संसार में मेरा कौन है ! जब तक तुम मुझ पर कृपा नहीं करोगी, मैं तुम्हारे पैर नहीं छोड़ूँगा।

मृत्यु मनुष्य मात्र के लिए दुर्निवार है। में जानता हूँ कि मैं ज्यादा दिन नहीं जीऊँगा। तुम मुझ पर कृपा नहीं करोगी तो मैं यहीं, तुम्हारे पैरों के नजदीक ही जान दे दूँगा।"

* * * * *

तीन दिन और तीन रात तक बेचारा कुमार दाना-पानी और नींद-आराम भुला कर देवी पार्वती के पैरों के पास धरना देकर बैठा रहा। तीसरी रात का तीसरा पहर भी बीतने को आया। दूर कहीं मुर्गा बाँग देने लगा। अँधेरा, उजाड़ मन्दिर सहसा एक अपूर्व प्रकाश से जगमगा उठा। कुमार ने चकित होकर सर उठा कर देखा। लेकिन उसे वहाँ एक दुर्निरीक्ष्य तेजोराशि के अतिरिक्त कुछ न दिखाई दिया। हाँ, ये शब्द उसके कानों में गूञ्जने लगे -"बेटा, सोच न करो।

तुम्हारी इच्छा पूरी होगी। तुम बल-प्रयोग से मारुती को नहीं पा सकते। बुद्धि बल के प्रयोग से ही उसको जीत सकोगे। मैं तुम्हें तीन सोने के नीम्बू देती हूँ। जब तुम मारुती के साथ दौड़ते हुए पिछड़ जाओ तो एक नीम्बू पीछे फेंक देना। यों जरूरत पड़ने पर तीनों नींबुओं का इस्तेमाल करना। तुम्हारी इच्छा पूरी हो जायगी।"

पल भर में सारा तेज अदृश्य हो गया। कुमार को ऐसा लगा जैसे कोई अपने ठण्डे हाथ से उसका माथा सहला रहा है। तुरन्त उसके मन की सारे वेदना, देह की सारी थकान दूर हो गई। वहाँ से उठ खड़ा हुआ तो देखा कि हाथ में तीन सोने के नीम्बू चमक रहे हैं। उन्हें माथे से छुला कर वह मन्दिर से बाहर आया और नदी में नहा कर शहर की ओर चला।

स्वयम्बर के मैदान में पहुँचते पहुँचते सवेरा हो गया। लोग जमा हो रहे थे। मारुती होड़ के लिए तैयार खड़ी अपने प्रतिद्वन्दियों की राह देख रही थी। कुमार अच्छी तरह जानता था कि उसकी छाती पत्थर की है। फिर भी वह उस पत्थर को पिघलाना चाहता था। उसे देवी पार्वती का पूरा भरोसा था।

होड़ का सारा इन्तजाम हो गया। कुमार जाकर सीधे राजकुमारी मारुती की बगल में खड़ा हो गया। दोनों 'एक, दो, तीन' सुनने का इन्तज़ार करने लगे। दूसरे ही क्षण दोनों दौड़ने लगे और शुरू ही में कुमार पिछड़ने लगा। तुरन्त उसने एक सोने का नीम्बू निकाल कर पीछे फेंक दिया। सुनहरी धूप में जगमगाता हुआ वह नीम्बू वेग से पीछे लुढ़कने लगा।

उस नीम्बू को देख कर मारुती की आँखें लालच से चमकने लगी। वायुवेग से लुढ़कता हुआ वह नीम्बू मानों उसी को चुनौती दे रहा था। वह पीछे मुड़ी, वेग से

दौड़ कर उस नीम्बू को उठा लिया और फिर कुमार की ओर दौड़ी। कुमार तब तक थोड़ा आगे निकल गया था।

लेकिन मारुती के लिए उसके पास पहुँच जाना कोई बड़ी बात नहीं थी। वह वेग से दौड़ कर पल में उसके पास पहुँच गई। आगे निकल ही जाना चाहती थी कि कुमार ने अपनी जेब से दूसरा नीम्बू निकाला और पीछे फेंक दिया। इस बार भी मारुती अपना लोभ साम्बरण न कर सकी। वह पीछे मूडी और उस नीम्बू को उठाने दौड़ी। जब तक वह नीम्बू लेकर कुमार की तरफ दौड़ी तब तक कुमार बहुत दूर निकल गया था।

फिर भी मारुती के पैरों में जैसे पर लग गए थे। वह तूफान की तरह दौड़ने लगी और कुछ ही देर में कुमार के पास जा पहुँची। आगे बढ़ने ही को थी कि कुमार ने अपनी जेब से तीसरा नीम्बू निकाला और बदन की सारी ताकत लगा कर पीछे की ओर फेंक दिया।

मारुती रुक गई। उसकी नज़र पल भर कुमार पर ठहरी, जो थकान के मारे हाँफते- रुकते चला जा रहा था। दूसरे ही क्षण उसने नीम्बू को देखा जो विलय वेग से लुढ़कता ओझल होता जा रहा था। बस, वह पीछे मुड़ी और नीम्बू की ओर दौड़ी। जब तक उसने दौड़ कर नीम्बू उठा लिया और पीछे मुड़ी तब तक कुमार बहुत आगे निकल गया। लक्ष्य भी ज्यादा दूर न था। बेचारी मारुती हवा से बातें करती हुई दौड़ने लगी। लेकिन यह कुमार के पास पहुँच न सकी। कुमार उससे पहले ही लक्ष्य पर पहुँच गया था।

लोगों के हर्षनाद और जय-जय कार से आसमान गूजने लगा। मन्त्री और पुरोहित दौड़ गए और वरमाला ले आए। मारुती ने काँपते हुए हाथों से माला कुमार के गले में डाल दी। लाज से उसका सर झुक गया। मारुती में यह प्रथम स्त्रियोचित लक्षण देख कर राज-परिवार फूला न समाया।

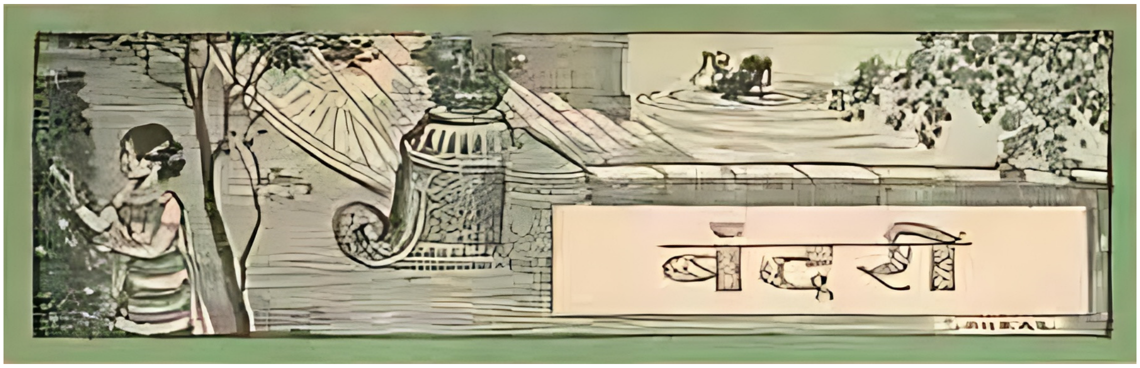

पुराने जमाने में काञ्चीपुर राज्य पर कनकसेन नाम का राजा शासन किया करता था। राजा कनकसेन बड़ा ही शौकीन आदमी था। उसने दूर दूर के देशों से तरह तरह के फूल-पौधे मँगवाए और राजमहल के पिछवाड़े में एक सुन्दर उपवन लगवाया।

उस उपवन में उसने एक सरोवर मी खुदवाया। सरोवर के चारों ओर बड़े बड़े पेड़ उगवाए और मनोहर लतामण्डप रचाए।

एक दिन काञ्चीपुर की रानी उस सरोवर में नहाने गई। पानी में घुसने के पहले रानी ने अपने बहुमूल्य आभरण उतार कर एक दासी को रखने के लिए दिये। उन आभरणों में एक अमूल्य रत्नहार भी था।

दासी ने एक बार चारों तरफ नज़र दोहाई और वहाँ किसी को न देख कर गहने जमीन पर रख दिए। फिर वह जाकर चुपके से फूल बीनने लगी। इतने में एक बन्दरी, जो वहीं पेड़ों पर रहती थी नीचे कूद पड़ी और रत्नहार चुरा कर एक ही छलाँग में फिर पेड़ पर चढ़ गई।

बन्दरी का हार उठा ले जाना दासी ने देख तो लिया। लेकिन बेचारी कुछ न कर सकती थी। चिल्लाने पर उसी की जान पर आ बनती। इसलिए गुम रह गई। रानी जब नहा-धोकर किनारे आई और कपड़े पहनने लगी तो हार गायब देख कर दासी से पूछने लगी।

"मैं क्या जानू ? आपने जो जो गहने मुझे रखने को दिए,वे सभी वहाँ रखे है।"दासी ने कहा।

रानी ने लौट कर तुरन्त राजा से शिकायत की। राजा ने मन्त्री को बुलाया और हुक्म दिया कि "साँझ होने के पहले चोर पकड़ा नहीं गया तो तुम्हारी खैर नहीं।"

राजाज्ञा के अनुसार मन्त्री ने सेनापति को बुलाया और सारा हाल सुना कर कहा-

सुन्दरलाल

"साँझ होने के पहले ही चोर को पकड़ कर लहार ले आओ। नहीं तो नाहक नौकरी से हाथो बैठोगे।"

तुरन्त सेनापति सैकड़ों सिराहियों के साथ रत्नहार की खोज करने निकला। सारा शहर छान मारा। लेकिन कोई फायदा न हुआ। इन सब लोगों का ख्याल था कि चोर जरूर गरीब होगा। इसलिए फटे-चीथड़े गन्दे कपड़े पहने होगा और दुबला-पतला होगा। आखिर साँझ तक भटक भटक कर सेनापति ने एक गरीब, दुबले-पतले आदमी को पकड़ लिया और राजा के सामने लाकर पेश किया। चोर के पकड़े जाने की खबर सुन कर सब लोगों को खुशी हुई।

"तूने रत्नहार कहाँ छिपा रखा है ?" राजा ने उस आदमी से गरज कर पूछा।

उस गरीब आदमी को मालूम था कि अपने को बेकसूर बताने पर कोई इसका विश्वास नहीं करेगा और उसे क्षण फाँसी दे दी जायगी। इसलिए उसने डर से काँपते हुए कहा-"हुजूर ! मैंने यह रत्नहार खजाञ्चीजी को दे दिया है। तुरन्त खजाञ्ची को पकड़ कर वहाँ लाया गया। राजा ने उनसे भी वही सवाल किया।खजाञ्ची भी बेवक़ूफ़ नहीं थे। वे राजा का मन अच्छी तरह जानते थे। इसलिए बेखटके बोले-"हुजूर! मैंने तो वह रत्नहार राजयोतिषीजी को दे दिया है।" हथकड़ी-बेड़ी लगा कर राजयोतिषी को राजा के सामने पेश किया गया। राजा ने उनसे भी वही पुराना सवाल किया। ज्योतिषीजी ने निसङ्कोच जवाब दिया-"हुजूर! मैंने वह रत्नहार मन्त्रीजी के बड़े लड़के को दिया है।"

तुरन्त फरमान हुआ कि "जाओ, मन्त्री के बड़े लड़के को पकड़ लाओ !" उसे तुरन्त पकड़ लाया गया। लेकिन तब तक रात बहुत हो गई थी।

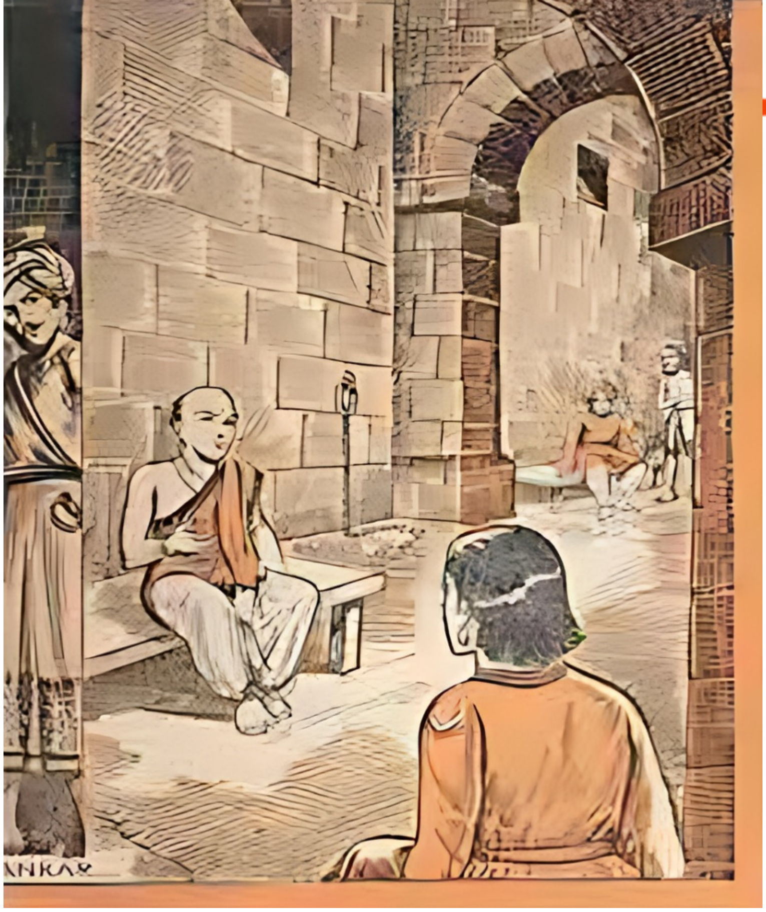

इसलिए राजा ने कहा-"अभियुक्तों को कैद कर जेल में बन्द कर दो। कल सबेरे हम फिर इन्साफ़ करेंगे।" इतना कह कर राजा उठ गए। अभियुक्तों को ले जाकर जेल में बन्द कर दिया गया।

उस रात बेचारे मन्त्री की नींद हराम हो गई। रत्नहार तो गया ही साथ ही चोरी का इल्ज़ाम उस गरीब से जो शुरू हुआ तो सीधे अन्त में उन्हीं के लड़के के सिर मढ़ दिया गया। उन्होंने सोचा-"इस मामले में जरूर कोई न कोई गड़बड़ी है।" इसलिए आधी रात के वक्त उठ कर वे सीधे जेल में गए और अभियुक्तों की कोठरी की दीवार से कान लगा कर सुनने लगे।

पहले तो उस कोठरी में से किसी के रोने की आवाज आई। थोड़ी देर बाद रोना रुक गया। उस गरीब की आवाज़ ने कहा-"खजाञ्ची जी ! माफ़ कीजिएगा। जान की खौफ से मैं सफेद झूठ बोल गया। वास्तव में में इस रत्नहार के बारे में कुछ नहीं जानता।"

फिर खजाञ्ची की आवाज़ बोलने लगी-"ज्योतिषी जी महराज ! क्षमा कीजिएगा। मैंने झूठा दोष आपके सिर थोप दिया। इसकी वजह खौफ के अलावा और कुछ नहीं थी।"

तब ज्योतिषी जी बोले-"अरे भाई! मैं क्या दूध का धुला हूँ? मैंने सारा दोष प्रधान मन्त्री के लड़के के सिर थोप दिया और अपनी बला टाल ली।"

मन्त्री ने जो खड़ा खड़ा सारी बातें सुन रहा था, भेद जान लिया। वह वहाँ से सीधे राजा के पास चला गया और उसे नींद से जगा कर, जो कुछ सुना था, सब कह दिया। मन्त्री का बयान सुन कर राजा

ने एक लम्बी साँस छोड़ी। "फिर वह रत्नहार चुराया किसने ?" पौ फटने तक राजा यही सोचता बैठा रहा।

सबेरा हुआ। तुरन्त राजा ने उस दासी को, जिसे रानी ने रत्नहार रखने को दिया था, चुलाया और धमकाया-"बोल ! रत्नहार किसने लिया ? सच सच बता। नहीं तो तेरी बोटी बोटी उड़ा दूँगा।" दासी घबरा गई। बोली-"महाराज ! मेरा कोई कसूर नहीं! में ठीक ठीक तो नहीं बता सकती कि रत्नहार किसने चुराया। हाँ, उपवन के पेड़ों पर रहने वाली एक बन्दरी पर मुझे शक होता है।"

"उस बन्दरी पर तुम्हें क्यों शक होता है ? क्या वह तुम से ज्यादा सुन्दर है?" राजा लाल-पीली आँखें करके बोला। "नहीं हुजूर ! मैंने देखा कि वह रानी साहिबा की तरह ही चलने की कोशिश करती है। रानीजी का नहाना देख कर वह भी पेड़ की डालों पर नहाने का अभिनय करने लगी। इतना ही नहीं, मैंने उसे रानी साहिबा की तरह मुस्कुराने की कोशिश भी करते देखा।" वह वाचाल दासी बोली। उसकी ऐसी बातें सुन कर राजा के सारे बदन में

आग लग गई। उसने सोचा-"इस गुस्ताख को तुरंत फाँसी की सजा दे देनी चाहिए।" लेकिन इतने में रत्नहार की याद जो आई तो चुप रह गए।

"अच्छा, तू कहती है कि उसी बन्दरी ने रत्नहार चुरा लिया होगा। ठीक है, मगर यह कैसे मालूम हो कि उसने उसे कहाँ छिपा रखा है?" राजा गुस्सा पी गया और बोला।

"यह तो कोई मुश्किल बात नहीं हुजूर!" दासी बोली और मुसकुराने लगी। "मुश्किल क्यों नहीं ?" राजा ने क्रोधित होकर पूछा।

"अच्छा। बताइए, रानी जी वह हार कब पहनती हैं ? जब आप महल में रहते हैं, तभी न ?" दासी ने पूछा।

"हो सकता है।" राजा ने त्योरियाँ चढ़ा कर कहा।

"हुजूर को गुस्सा आ रहा है; इसलिए मैं कुछ भी कहने का साहस नहीं कर सकती। सुनिए, अगर आप जानना चाहें कि उस बन्दरी ने रत्नहार कहाँ छिपा रखा है तो जाइए, एक बन्दर ले आइए। इसके अलावा और कोई चारा नहीं।" दासी ने कहा।

दासी की बातें सुन कर राजा को मन ही मन बड़ी हँसी आई। उसने जान लिया यह मुँहफट लड़की उस की एक बन्दर और उसकी रानी की एक बन्दरी से उपमा दे रही है। फिर भी रत्नहार तो वह गँवा नहीं सकता था। इसलिए चुप रह गया। बस, राजा का हुक्म पाते ही सिपाही दौड़ गए और एक बन्दर पकड़ लाए। उस बन्दर को राजा की सी पोशाक पहनाई गई। फिर उस को साथ लेकर राजा-मन्त्री आदि सदल बल सीधे उस उपवन में गए।

पेड़ों पर रहने वाली उस बन्दरी ने इस बारात को देखा। तुरन्त एक छलाँग मार कर वह नीचे की डाल पर कूदी और पेड़ के खोखले में में रत्नहार निकाल लिया। फिर उसे गले में पहन कर रानी की ही तरह हाव-भाव दिखाती हुई बन्दर की ओर बढ़ी।

इशारा पाते ही सिपाहियों ने बन्दरी को पकड़ लिया और गले में का रत्नहार छीन लिया। वह बेचारी बिलखाती हुई फिर पेड़ पर चढ़ गई।

तुरन्त निर्दोष अभियुक्तों को जोड़ दिया गया। राजा मन्त्री आदि ने दासी की बुद्धिमानी की बड़ी प्रशंसा की।

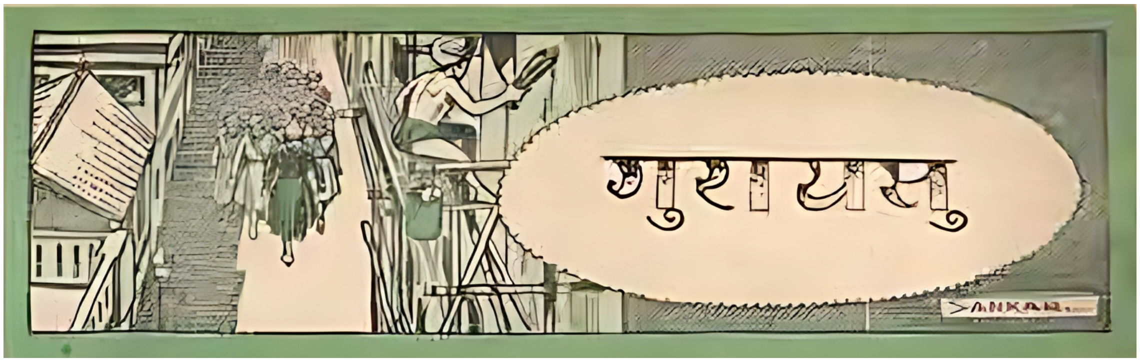

एक बार गुरु गोविन्दसिंहजी आनन्दपुर की सड़क पर पैदल हो चल रहे थे। वे उस दिन बड़े कीमती कपड़े पहने हुए थे। उनके पीछे पीछे चेलों का एक बड़ा जत्था चल रहा था।

कुछ दूर जाने के बाद उन्हें एक बड़ी ही सङ्करी गली से जाना पड़ा। उसी गली में एक मकान था, जिस की दीवार पर एक राज कुछ मरम्मत कर रहा था।

गुरुजी नीचे से जा रहे थे कि अचानक राज की लापरवाही से चुने के छींटे उछल कर उनकी पोशाक पर पड़े।

यह देख कर गुरुजी के चेलों को बहुत क्रोध आ गया। वे बोले-"इस बेवकूफ की आँखें सिर चढ़ गई हैं। देखता भी नहीं कि कौन जा रहे हैं?" गुरु गोविन्दसिंहजी रुक गए। राज नीचे उतर आया। गुरु गोविन्द ने एक चेले से कहा-"दण्ड के रूप में इसे एक तमाचा लगा दो।" गुरु के कहने भर की देर थी कि तुरन्त एक-एक चेले ने राज के मुँह पर एक एक तमाचा जड़ दिया। बेचारे का मुँह लाल हो गया। उसने कहा-" देव! गलती मेरी थी। दीन पर कृपा कीजिए।"

तब गुरु ने उसे माफ कर दिया और अपने चेलों से बोले-"मैने इसे एक ही तमाचा लगाने को कहा था। फिर हर एक ने एक एक तमाचा क्यों मार दिया ?"

चेलों के मुँह से कोई बात न निकली। बस एक दूसरे का मुँह ताकते रह गए। आखिर एक चेले ने साहस करके आगे बढ़ कर कहा-"गुरुजी ! आपने किसी एक को यह काम करने को नहीं कहा था। इसलिए हरेक ने समझा कि यह हुक्म उसी के लिए है। गुरु की आज्ञा पूरी करने की उतावली में हरेक ने उसे एक एक तमाचा लगा दिया।"

हरबोलसिंह

तब गुरु ने राज से पूछा-"क्यों बेटा! तुम्हारा व्याह हो गया है ?"

"नहीं; मैं कुँवारा हूँ।" उसने जवाब दिया।

तब गुरु ने अपने चेलों से कहा-"तुम सभी मेरे प्यारे चेले हो। मेरा हुक्म बजा लाने में तुम में से कोई नहीं हिचकिचाता। मैंने इस राज को एक तमाचा उगाने का हुक्म दिया। हरेक ने एक एक तमाचा लगा दिया। इससे विदित होता है कि तुम लोग कितने आज्ञाकारी हो। अब इसी के बारे में मैं और एक आज्ञा देता हूँ। इस बेचारे का अभी व्याह नहीं हुआ है। तुम में से जिसके घर सयानी लड़की हो, वह इसे अपना दामाद बना ले।" गुरु की यह अनोखी आज्ञा सुन कर चले सभी हक्के-बक्के से रह गए। अन्त में एक चेले ने आगे बढ़ कर कहा-"मेरी एक सयानी लड़की है। में इस जवान को अपना दामाद बना कर गुरु की आज्ञा पूरी करने के तैयार हूँ।" यह सुन कर गुरु गोविन्दसिंह उसकी बड़ी प्रसंशा करने लगे। बाकी चेलों ने शरम से सिर झुका दिया। गुरु ने उस आज्ञाकारी चेले को आशीर्वाद दिया और कहा-"आज्ञा चाहे कितनी ही अप्रिय क्यों न हो, पूरी होनी चाहिए। जो प्रिय आज्ञा पूरी करने में तत्परता दिखाता है और अप्रिय अज्ञा पूरी करने में हिचकिचाता है, उसे आज्ञाकारी नहीं कहा जा सकता। जो अपनी आज्ञाकारिता की डीङ्ग हाँकते है उन्हें इस बात का ध्यान रखना चाहिए।"

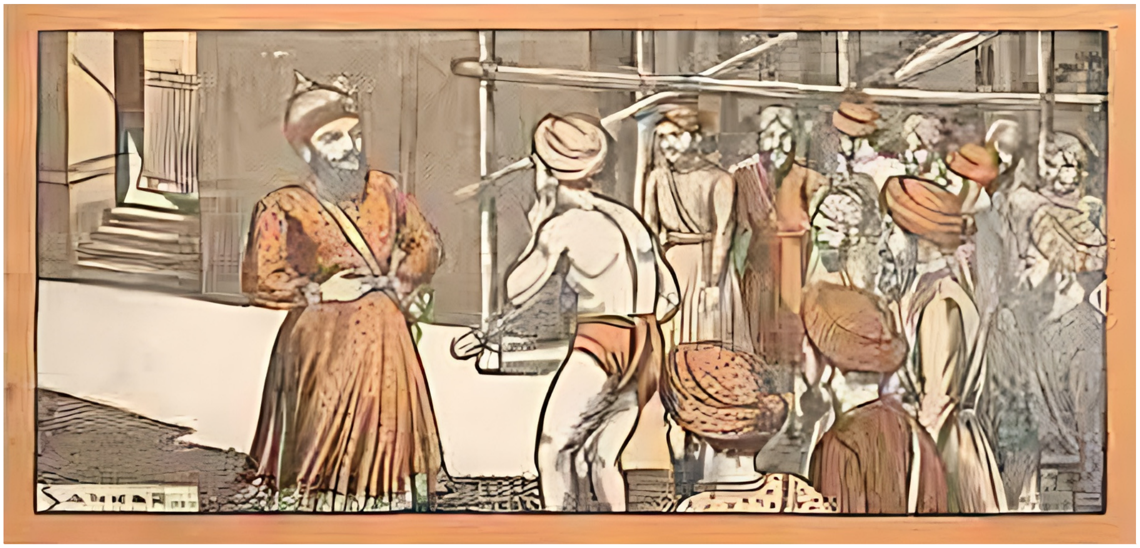

साँझ का वक्त था। शान्तिसिंह जो अपने कुछ साथियों के साथ दूर देश के एक जमींदार के यहाँ दावत का लुत्फ़ उठा कर घर लौट रहा था। नजदीक पहुँचने पर देखा कि रत्न-दुर्ग में एक निस्तब्धता छाई हुई थी। यह कोई मामूली निस्तब्धता नहीं थी। इस में कोई खासियत थी।

शान्तिसिंह को आश्चर्य के साथ साथ आशङ्का भी हुई। घोड़े से उतर कर देखा तो फाटक टूटा हुआ था। अन्दर जाने पर चारों ओर सिपाहियों को लाशे बिखरी पड़ी दिखाई दी। यहाँ तक कि औरतों और बच्चों को भी नहीं छोड़ा गया था। रनवास में घुसते ही पहले-पहल उसकी नजर अपने भाई के बच्चे की लाश पर पड़ी। बगल में ही उसकी भाभी पड़ी थी जिन्होंने आत्महत्या कर ली थी। देखते ही मालूम हो जाता था कि उन के गहने बगैरह किसी ने जबर्दस्ती छीन लिए हैं। बेचारा शान्तिसिंह यह हत्याकाण्ड देख कर स्तब्ध रह गया।

इतने में प्राङ्गण के एक कोने में से किसी के कराहने की आवाज सुनाई दी। शान्तिसिंह ने वहाँ जाकर देखा तो पुरोहित जी दम तोड़ रहे थे। शान्तिसिंह को देख कर वे बड़े कष्ट से इतना बोल सके-"बेटा ! क्रूरसिंह ने दुर्ग पर चढ़ाई कर दी। अपने सिपाही सभी असावधान थे। इसके अलावा किसी विश्वासघाती ने दुश्मन को हमारे सभी राज बता दिए थे। इसलिए तुम्हारे भाई यों ही हार गए।

दुश्मनों के अत्याचारों का ठिकाना न रहा। औरतों बच्चों को भी मार कर सारा किला लूट लिया; राजमहल का कोना-कोना छान मारा। फिर भी जिस रत्न के लिए उन्होंने वह लूट-खसोट मचाई थी, वह उन्हें न मिला। तुम्हारी भाभी ने सोचा-"ये दुष्ट ब्राम्हण

पर हाथ लगाने का साहस न कर सकेंगे !" मरते वक्त यह रत्न मुझे दे गई। लो, अपनी थाती!" इतना कहते कहते पुरोहित की आँखें आखिरी बार चमक उठीं। मालिक का माल हिफाजत से सौंप कर वे निश्चिन्त होकर चल बसे।

शान्तिसिंह उस अमूल्य रत्न को कमर-बन्द में खोंस कर जल्दी से बाहर निकला। उसके लिए एक बारगी दुनिया ही अँधेरी हो गई। सारा किला शमशान की तरह सूना पड़ा था।

यह नहीं कि वह क्रूर सिंह को नहीं जानता था। वह पड़ोस के सिंहदुर्ग का ही स्वामी था। बड़ा जालिम आदमी था। रत्न दुर्ग के राजवंश से उसका पुश्तैनी दुश्मनी थी। फिर रत्नदुर्ग के राजवंश के उस अमूल्य रत्न पर तो उसकी आँखें बहुत दिनों से गड़ी हुई थीं।

"फिर क्या ? समय मिला और जालिम ने अपना वार किया।" शान्तिसिंह ने सोचा। अब उसका उस किले में एक क्षण भी रहने का मन न हुआ। इसलिए वह घोड़े पर सवार हो कर अपने इने-गिने साथियों के साथ उत्तर की ओर रवाना हुआ।

मगर एक विश्वासघाती ने उसको जाते देख लिया। वह भी उन जासूसों में से एक था जिन्होंने क्रूरसिंह को दुर्ग का सारा भेद बता दिया था। वह तुरन्त उस पहाड़ी पर गया जहाँ क्रूरसिंह अपनी सेना के साथ ठहरा हुआ था। "मैं बता सकता हूँ कि रत्न-दुर्ग का अमूल्य रत्न कहाँ है ! मुझे क्या इनाम मिलेगा।" उसने क्रूर सिंह से जाकर कहा। "हजार अशर्फियाँ दूँगा।" क्रूरसिंह ने कहा। सौदा पट गया। क्रूरसिंह ने कहा कि वह पेशगी दो सौ अशर्फियाँ देगा और भेद बताने के बाद बाकी रकम दे देगा।

यह कह कर उसने दो सौ अशर्फियाँ दे दीं। तब उस विश्वासघाती ने उसे बता दिया कि "रत्न शान्तिसिंह की कमरबन्द में है और वह अपने साथियों के साथ उत्तर की ओर जा रहा है।" तब क्रूरसिंह ने बाकी अशर्फियाँ भी दे दी और कहा-"भेद के लिए मैं बादे के मुताबिक हजार अशर्फियाँ दे चुका। अब तुम्हें विश्वासघात का फल भी चखाना है।" यह कह कर उसने छुरा निकाल कर उस विश्वास घाती की छाती में भोंक दिया और लाश को यहीं छोड़ कर कुछ सिपाहियों के साथ शान्तिसिंह का पीछा करने लगा।

थोड़ी देर बाद शान्तिसिंह को पता चल गया कि कोई उसका पीछा कर रहा है। तुरन्त उसने अपने साथियों को चेताया और घोड़ा वेग से दौड़ाने लगा। लेकिन कोई फायदा न हुआ। दुश्मन पीछा करते ही रहे। धीरे धीरे वे लोग नजदीक होते आए।

शन्तिसिंह ने अपने साथियों को दूसरी तरफ मुड़ जाने को कहा और अकेले ही आगे बढ़ चला। उसे यह अच्छी तरह मालुम था कि उसके पास जो रत्न है, उसी के लिए दुश्मन उसका पीछा कर रहे हैं। इसलिए वे उसके साथियों का पीछा नहीं करेंगे। हुआ भी ऐसा ही। उसके साथी साफ निकल गए।

शान्तिसिंह का अरबी घोड़ा हवा से बातें करने लगा। उसकी तेजी ही उसे दुश्मनों से बचाने लगी। फिर भी दुश्मनों ने हार नहीं मानी। पीछा करते ही रहे।

दिन ढल गया। शान्तिसिंह ने पीछे फिर कर देखा तो मलम हुआ कि क्रूरसिंह के सिपाही भी पिछड़ गए हैं। वह अकेला ही उसका पीछा कर रहा है। अब उसके सफेद अरबी घोड़े और क्रूरसिंह के काले घोड़े में होड़ शुरू हुई। लेकिन शान्तिसिंह

का घोड़ा बेहद थक गया था। इधर क्रूरसिंह बहुत नजदीक आ गया था। इसलिए उसने घोड़ा रोक दिया और निशाना लगा कर क्रूरसिंह पर अपना भाला फेंका। लेकिन क्रूरसिंह ने घोड़ा हटा लिया जिससे भाला उसे न लग कर उसके घोड़े को ही लगा।

तुरन्त वह नीचे गिर पड़ा। सवार भी नीचे गिर पड़ा और इस तरह पड़ा रहा जैसे उसे कड़ी चोट आई हो।

शान्तिसिंह निश्शङ्क होकर उसके नजदीक गया। तुरन्त क्रूरसिंह ने उछल कर उसकी कमर पकड़ ली। बेचारा शान्तिसिंह हक्का- वक्का सा रह गया। अन्त में दोनों छुरे निकाल कर भिड़ गए। बड़ी देर तक छुरेवाजी चलती रही। अन्त में क्रूरसिंह ने तलवार निकाल ली। शान्तिसिंह ने भी तलवार निकाल कर उसका सामना किया। इस संघर्ष में उसकी छाती पर बड़ी चोट लगी। खून की धार बह चली। फिर भी वह जान पर खेल कर लड़ता ही रहा। अन्त में उसने उछल कर एक ऐसा बार किया कि क्रूरसिंह का सिर धड़ से जुदा हो गया और धूल में लोटने लगा। शान्तिसिंह ने बदला चुका लिया।

लेकिन बेचारा बहुत ही थक गया था। फिर भी वहाँ रुका नहीं; आगे बढ़ता ही गया। क्योंकि क्रूरसिंह के साथियों के आ जाने का डर था।

सवेरा होते होते शान्तिसिंह काश्मीर की घाटियों में पहुँच गया। हरे भरे पेड़, चहचहाती चिड़ियाँ और निकट ही कल-कल-नाद करते बहते हुए झरनों को देख कर उसका चित्त प्रसन्न हो गया। सारी थकान दूर हुई सी जान पड़ने लगी। यह भी मूल गया कि वह काल के मुँह से बच कर आ रहा है। थोड़ी दूर पर जब उसे एक सुन्दर बगीचा दिखाई दिया तो वह

उस में घुस गया और एक सङ्गमरमर के चबूतरे पर लेट कर, तुरन्त सो गया।

वह बगीचा था उस प्रान्त के स्वामी ध्यानसिंह की इकलौती बेटी पुमित्रा का। वह अपनी सखियों के साथ बगीचे में टहलने आई थी। वहाँ कोई नहीं आ सकता था; इसलिए निश्शङ्क होकर उछल-कूद रही थी।

इतने में सोते हुए शान्तिसिंह पर उसकी नजर पड़ी। बेचारी लजा कर लौटने लगी। मगर उसका सुन्दर रूप देख कर लौटने का मन न हुआ। उसी समय शान्तिसिंह की नीद टूट गई। उसने भी राजकुमारी सुमित्रा को देख लिया। तुरन्त उठ कर प्रणाम किया। राजकुमारी शरम से सिर झुका कर वहाँ से लौट गई।

लेकिन लेटते वक्त वह शान्तिसिंह का हृदय भी अपने साथ लेती गई थी। वह बेचारा राजकुमारी को देख कर बावला सा हो गया था। लेकिन राजकुमारी को चाहना क्या था, बौने का चाँद को छूने के लिए हाथ पसारना था। बेचारा सोच में पड़ गया। अन्त में उसे उस अमूल्य रत्न की याद आई। बस, उसके मन में जरा आशा जाग उठी।

उसने तुरन्त सुमित्रा के पिता के पास जाकर वह रत्न दिखाया और अपना परिचय दिया। उस रत्न को देखते ही सुमित्रा का पिता उसके स्वामी को भी पहचान गया। क्योंकि वह रत्न सारे संसार में विख्यात था। सुमित्रा के पिता ने शान्तिसिंह की बड़ी खातिर की और अपने यहाँ रख लिया।

साल बीतते बीतते बड़ी धूम-धाम के साथ सुमित्रा और शान्तिसिंह की शादी हो गई। जिस अशुभदाई रत्न ने उसके भाई का हरा-भरा घर उजाड़ दिया था उसी ने आज शान्तिसिंह का घर बसा दिया था।

रङ्गीन चित्र - कथा, चित्र – ५